॥ श्रीः ॥

चौखम्भा प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला

३०

श्री ब्रह्मानन्दगिरिविरचितं

तारारहस्यम्

'उमंग' हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याता

एस.एन. खण्डेलवाल

18643

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्य-विद्या, आयुर्वेद एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक

दिल्ली-110007 (भारत)

॥ श्रीः ॥

चौखम्भा प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला

३०

श्री ब्रह्मानन्दगिरिविरचितं

तारारहस्यम्

'उमंग' हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याता

एस.एन. खण्डेलवाल

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्य-विद्या, आयुर्वेद एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक

दिल्ली – 11[illegible] 007 (भारत)

प्रकाशक :

चौखम्भा पब्लिशर्स

गोकुल भवन, के-37/109, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी-221001 (भारत)

शाखा :

चौखम्भा ओरियन्टालिया

पोस्ट बॉक्स नं. 2206

बंग्लो रोड, 9-यू.बी., जवाहर नगर

(कमला नगर के पास)

दिल्ली-110007 (भारत)

फोन : 23851617, 23858790

© चौखम्भा पब्लिशर्स, वाराणसी

संस्करण : 2013

मूल्य : ₹ 250

ISBN : 978-81-89469-54-2

मुद्रक : तरुण आफसेट प्रेस, नई दिल्ली-2

|| श्रीः ||

CHAUKHAMBHA PRACHYAVIDYA GRANTHAMALA

30

TĀRĀRAHASYAṂA

OF

BRAHMĀNANDA GIRI

'Umang' Hindi Commentary

by

S.N. Khandelwal

RGCSLIB

18643

DELHI

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA

A House of Ayurvedic & Indological Books

DELHI (INDIA)

Publishers :
Chaukhambha Publishers
Gokul Bhawan, K-37/109, Gopal Mandir Lane
Varanasi – 221 001 (India)

Branch :
Chaukhambha Orientalia
Post Box No. 2206
Bungalow Road, 9–U.B., Jawahar Nagar
(Near Kamla Nagar)
Delhi – 110 007 (India)
Phone : 23851617, 23858790

© CHAUKHAMBHA PUBLISHERS, Varanasi

ISBN : 978-81-89469-54-2

Printers — Tarun Offset Press, New Delhi - 2

विषयानुक्रमणिका

प्रथमः पटलः

		पृष्ठ संख्या
१.	मंगलाचरण	१
२.	सृष्टिप्रकरण	२
३.	प्रातःकृत्यादि प्रकरण	६
४.	तारा गायत्री प्रकरण	१३
५.	एकजटा सन्ध्या	१६
६.	तारादिसन्ध्या प्रकरण, उग्रतारा सन्ध्या	२१
७.	नीलसरस्वती सन्ध्या	२३
८.	बीजकोष प्रकरण–तारामन्त्र	२६
९.	विद्यानिरूपण प्रकरण–एकजटा मन्त्र	३३
१०.	तारा गायत्रीमन्त्रः	३५
११.	उग्रतारा गायत्री	३५
१२.	महाकालप्रिया गायत्री मन्त्र	३६
१३.	कुल्लूका प्रकरण	३७

द्वितीयः पटलः

१.	तारा दीक्षादि प्रकरण	४१
२.	शिवलिङ्गार्चन प्रकरण	४५
३.	अन्तर्याग प्रकरण–स्नान	५३
४.	सन्ध्या	५५
५.	ध्यान	५६
६.	पूजा	५६
७.	अन्तर्यजन	५८
८.	उग्रतारा अन्तर्यागः	५९

९. नीलसरस्वत्यन्तर्यजनम् ६०
१०. मन्त्रोद्धार प्रकरण-एकजटा मन्त्रोद्धार ६१
११. एतासां धारण यन्त्रं ६२
१२. उग्रतारा यन्त्रं ६३
१३. नीलतारिणी यन्त्रं ६३
१४. यन्त्रसंस्कार ६४
१५. मालाप्रकरण महाशंखमयीमाला ६७
१६. सामान्य माला ६८
१७. शोधन ६९
१८. होम प्रकरण ७१

तृतीयः पटलः

१. मन्त्रविस्मरण प्रायिश्चत्त ७५
२. पञ्चतत्त्व संस्कार ७८
३. शक्तिसाधनं प्रकरण-मांसशुद्धि ८३
४. मीनशुद्धि ८३
५. मुद्राशुद्धि ८४
६. शक्ति संस्कार ८४
७. पात्रवन्दन मन्त्र ८८
८. शान्तिस्त्रोत ९५
९. पूजा प्रकरण ९६
१०. अङ्गन्यास १०४
११. पूजा प्रारम्भ-एकजटा पूजा १०८
१२. जपक्रम ११७
१३. तारापूजन ११९
१४. कामतारा पूजा १२०
१५. उग्रतारा पूजा १२०
१६. नित्यहोम १२३

चतुर्थः पटलः

१. त्रिषोढ़ा प्रकरण १२५
२. षोढ़ा न्यास प्रकरण योगाचार १२७

किञ्चिन्निवेदनम्

इस तन्त्रग्रन्थ में महाविद्या तारा की तत्व साधन प्रणाली वर्णित है। इस ग्रन्थ के प्रणेता बंगाल के महासाधक श्री ब्रह्मानन्द गिरि का सम्पूर्ण जीवनवृत्त आज उपलब्ध नहीं है। इनके पूर्वाश्रम के नाम आदि के सम्बन्ध में भी अधिक ज्ञात नहीं हो सका है। बंगाल में प्रकाशित सम्प्रति दुष्प्राप्य ग्रन्थ 'साधन कल्पलतिका' से इनके सम्बन्ध में कुछ अभिज्ञात होता है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन काल आज से करीब 100 वर्ष पूर्व का है।

साधक ब्रह्मानन्द पूर्वी बंगाल के ब्राह्मण वंशोत्पन्न साधक थे। इनका ग्रन्थ 'शाक्तानन्द तरंगिणी' तथा 'तारारहस्य' ही उपलब्ध हैं। इनके शिष्य पूर्णानन्द गिरि कृत अनेक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। इन पूर्णानन्द गिरि के शिष्य थे 'तन्त्रसार' प्रणेता श्रीमत् कृष्णानन्द आगम वागीश। इस सम्बन्ध में पूर्णानन्द गिरि महाशय के ही वंश में उत्पन्न श्री व्रजेन्द्र चन्द्र शास्त्री द्वारा लिखित 'श्रीमत् पूर्णानन्द गिरि परमहंस देव' शीर्षक लेख साप्ताहिक 'पथेर आलो' में आज से करीब 40 वर्ष पूर्व छपा था। जिससे इस सम्बन्ध में कुछ संकेत प्राप्त होता है।

इनका जन्म स्थान ढाका जिला (सम्प्रति बांगला देश) के किसी ग्राम में कहा जाता है। तथापि विक्रमपुर के निकट माउईसार के वनप्रान्तर में दिगम्बरी तला नामक स्थान में इनका आसन आज भी संरक्षित है। यही इनकी तपोभूमि मानी जाती है। यहाँ से इन्होंने कामाख्याधाम में जाकर दीर्घकालीन तपश्चरण किया था। इनकी तपस्या देखकर कामाख्या देवी ने वहाँ के राजा को स्वप्नादेश दिया था–'यह तपस्वी तीन दिन से मेरे मन्दिर के पास निराहार रहकर उत्कट तपस्या कर रहा है। उसको यहाँ से शीघ्र भगा दो, नहीं तो वह मुझे उत्कट कष्ट देगा।' प्रातः राजा ने आकर देखा। ये वहाँ ध्यान निमग्न आसीन थे। राजा उनके ध्यान भंग का साहस न कर सका। वहीं प्रतीक्षारत हो गया। जब पूजा की घंटाध्वनि से इनका ध्यान भंग हो गया तब राजा ने इनको भगवती के आदेश से अवगत कराया। तब से ब्रह्मानन्द दिवाकाल में तो अन्यत्र ध्यान करते लेकिन रात होते ही मन्दिर प्रांगण में आ बैठते! भगवती ने यह वृत्तान्त भी राजा को स्वप्न में सुनाकर आदेश दिया कि यह ब्राह्मण कामाख्या

की सीमा में प्रवेश ही न करे। राजा ने आदेश शिरोधार्य किया तथा जगह-जगह प्रहरी तैनात कर दिये। लेकिन ब्रह्मानन्द ने विचार किया कि भगवती अवश्य मुझे याद करती हैं! तभी तो बारम्बार मेरा वारण कर रही हैं। यही अहोभाग्य है। तप भंग नहीं करूँगा। अब वे साधनार्थ स्थानान्वेषण में लग गये।

अन्वेषण काल में उन्होंने देखा कि पास में ही एक मृत हाथी का शव पड़ा है। वह स्थान मन्दिर के निकट ही था। ब्रह्मानन्द उस मृत हाथी के पेट में छिपकर जपादि कार्य में लग गये। देवी ने इसका भी स्वप्न राजा को दिया। अब राजा ने वहाँ भी चौकीदार लगा दिया। अब ब्रह्मानन्द ने विचार किया कि किस युक्ति से कामाख्या क्षेत्र में प्रवेश मिले। पहाड़ के तलदेश को वहाँ 'खट' कहते हैं। यह खट पर्वतस्थ मन्दिरवासियों का मलत्याग स्थान था। ब्रह्मानन्द ने इस मलपूर्ण स्थान से प्रवेश किया और वहीं बैठकर जपादि करने लगे क्योंकि यह भी कामाख्या क्षेत्रान्तर्गत था। अब जगदम्बा से नहीं रहा गया। उनको साक्षात्कार देना पड़ा। भगवती ने इनको दो दिव्य नायिकायें उमा तथा वासा नामक प्रदान कीं। ब्रह्मानन्द उन दोनों के साथ तीर्थाटन करने लगे। ब्रह्मानन्द ने अपने आसनार्थ एक प्रस्तर का आसन निर्माण कराया जो आज के परिमाण से ८०० किलोग्राम का था। ब्रह्मानन्द जहाँ भी जाते ये दोनों दिव्य नायिकायें अपनी सिद्धि से इस प्रस्तरासन को वहीं स्थापित कर देतीं। कोई इन नायिकाद्वय को तो देख नहीं सकता था, भले ही इस प्रस्तरासन को वायु में उड़ते देख सभी विस्मित होते थे।

ढाका के महाप्रतापी जमींदार चाँदराय इनके शिष्य थे। उनके छोटे भाई केदारराय तत्कालीन महान् आचार्य गोसाईं भट्टाचार्य के शिष्य थे। गोसाईं जी की कुटिया जमींदार के आवास के ही निकट थी। जब चाँदराय ने गिरि महाशय का शिष्यत्व ग्रहण किया था, तभी भगवती ने उनको स्वप्न दिया-'जब ब्रह्मानन्द तुमको आशीर्वाद देना चाहें तब उसी समय तुम उनके विशाल प्रस्तरासन को माँग लेना।' देवी के सिखाये के अनुसार चाँदराय ने वही किया। ब्रह्मानन्द ने भी प्रस्तरासन चाँदराय को अर्पित कर दिया।

एक बार ब्रह्मानन्द गिरि घूमते-घूमते चाँदराय के घर आये। उस समय चाँदराय टैक्स चुकाने गये हुए थे। वहाँ उनके छोटे भाई ने इनकी अभ्यर्थना की। ब्रह्मानन्द ने अपना कपाल पात्र रखकर केदारराय से कहा-'बहुत प्यास लगी है। पात्र में आसव (मद्य) भर दो।' केदार उसमें आसवपात्र से मद्य ढालने लगे। घर का सारा मद्य उसमें छोड़ा गया लेकिन पात्र आधे से अधिक नहीं भर सका। तब बाजार का भी सारा स्टॉक उसमें डाल दिया गया तो भी वह कपाल पूरित नहीं हो सका।

निरुपाय होकर केदार अपने गुरु गोसाईं भट्टाचार्य के पास गये और सब कथा कही। गोसाईं जी ने कहा–'हमको कुछ मद्य दो।' लेकिन कहीं मद्य बचा ही नहीं था। केदार अवसन्न होकर खड़े थे। अन्ततः ब्रह्मानन्द ने कहा–'भट्टाचार्य महाशय! अब शिष्य को मुक्त करिये।' तब भट्टाचार्य महाशय ने स्वयं खोजकर जो दो–चार बूँदें मद्य मद्यपात्रों में से पोंछकर निकालीं। उन्हें मन्त्रपूत करके उस कपाल पात्र में छिड़का। तब ब्रह्मानन्द कहने लगे–'धन्य भट्टाचार्य महाशय! आपने शिष्य को बचा लिया।' यह कहकर वे कपालपात्रस्थ आसव पी गये। कुछ क्षण पश्चात् कहते हैं– 'मैं मूत्रत्याग करूँगा।' भट्टाचार्य महाशय उनको लेकर आगे गये तथा एक खेत का स्थान दिखलाया। मानो वहाँ वरुणदेव आ गये हो। ब्रह्मानन्द के मूत्र से समस्त खेत, आसपास का स्थान भर गया लेकिन मूत्रान्त नहीं हुआ। अभी भी वहाँ फसल नहीं उगती, ढाका में इस स्थान का नाम आज भी 'पोढ़ा गाछा' है। वहाँ की मिट्टी इतनी कठोर हो गई कि हल ही नहीं चलता!

ऐसे महासिद्ध द्वारा लिखित यह ग्रन्थ पूर्ण प्रामाणिक तथा साधकों के लिए अतीव उपादेय है। इन महासाधक का ग्रन्थ अनेक साधकों के लिए परमधन सिद्ध होगा, यह निःसंदिग्ध है।

एस.एन. खंडेलवाल

शारदीय नवरात्र, सन् २०१२

॥ श्रीः ॥

॥ श्री गुरवेनमः ॥

ताराहस्यम्

प्रथमः पटलः

॥ ॐ नमस्तारायै ॥

॥ अथ मङ्गलाचरणम् ॥

तारां सारतरां त्रिभुवनजननीं सर्नसिद्धिप्रदां।
सर्वाद्यां शुभदां सदा शिवमयीं देवैः सदा वन्दिताम्।
नत्वा राजे सरोजे सकल गुणमयीं तद्रहस्यं तनोमि।
ब्रह्मानन्दतनुभवसुतः साधकानां हिताय॥१॥

जो सार रूपा सारोत्सरा परात्परा परमश्रेष्ठा संसार की समस्त वस्तुओं की सारभूत एकमात्र सार वस्तु हैं, जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर को भी अपनी महिमा से अतिक्रान्त कर देती हैं, जो 'त्रि' अर्थात् सत्वादि गुणत्रय रूपा हैं। सबकी आदिभूता सनातनी नित्यानित्यस्वरूपा, लोकसमूह का प्रकाश (व्यक्त) करने वाली तथा उत्पत्तिक्षेत्र रूपा हैं, जो सर्वस्वरूपा (विश्वरूपा) हैं, सभी की अभीष्टा हैं, अणिमादि अष्टसिद्धि रूपा हैं तथा निर्वाण मुक्तिप्रदा हैं, जो परमाप्रकृति-सर्वा-सबकी आदि हैं, जो शुभ (सर्वमंगलरूपा) तथा 'दा' अर्थात् समुदय प्रदात्री हैं जो सर्वदा विराजिता हैं, सभी देश तथा सर्वावस्था में भी जिनका अभाव-क्षय नहीं होता, जो शिवमयी परमाप्रकृति रूप से परमपुरुष महादेव से युक्ता हैं, जो स्वतःसिद्ध प्रकाशयुक्त हैं, तब भी वे जिनकी सदा वन्दना करते हैं, जो सकल (पूर्णस्वरूपा) हैं जो 'गुण' (जगत् की उपादान स्वरूपा) हैं, 'मयी' हैं अर्थात् सर्वव्याप्यरूपा हैं, जो मूलाधार तथा सहस्त्रदल में कुण्डलीरूपा विराजिता हैं, उन तारा को प्रणाम करके साधकों की हितकामना हेतु मैं ब्रह्मानन्द गिरि इस 'ताराहस्य' का प्रणयन करता हूँ॥ १॥

ब्रह्मा विष्णुमरुमापतिस्त्रिभुवने सृष्टिं स्थितिं प्रालयं
ध्यात्वैनां जगदम्बिकां वितनुते मोक्षप्रदां तारिणीम्।
भक्त्या तद्गतमानसो यदि जनस्तारां भजेद् यत्नतः
स क्षेमङ्करमेतदेव लभते तत्त्यागतो यात्यधः॥२॥

सकलगुणप्रदा मोक्षदात्री तारा का ध्यान करके ब्रह्मा, हरि विष्णु तथा महेश्वर रूप देवत्रय त्रिभुवन की सृष्टि-स्थिति-संहार का कार्ग करते हैं। जो व्यक्ति इनकी भक्ति करता है। वह परममोक्षलाभ करता है और जो इनका त्याग करके अन्य देवता की आराधना करता है, उनके यजन-भजन में प्रवृत्त होता है, उसका अधःपतन निश्चित है॥ २॥

ज्ञात्वा तारारहस्यं भजति यदि जनस्तारकामन्त्रराजं
श्रेष्ठां सिद्धिं लभेताममरमनुजैर्दुर्लभां तारकातः।
त्यक्ता तारां प्रयाति ध्रुवमतिविपदामास्पदं मोहकूपं
दुःखं शोकञ्च सम्यग् गतिरपि सुतरां नैव भव्यां कदाचित्॥३॥

जो मेरे द्वारा प्रणीत इस रहस्य को जानकर सबकी उद्धारकर्त्री की भक्ति करता है, तब उसे विशेष सिद्धि अवश्य प्राप्त होगी। सुर, नर तथा पक्षिजातीय भी ऐसी सिद्धि का संग्रह नहीं कर सकते। जो इनकी भक्ति नहीं करेगा वह सर्वनाशक निरय परम्परा का सदैव भोग करेगा तथा शोक-दुःख में ही पड़ा रहेगा। वह कभी भी सैकड़ों आराधना से भी सद्गति नहीं पा सकेगा॥ ३॥

अथ सृष्टि प्रकरणम्

तारासारं समालोक्य तारानिगमेव च।
महानीलं महाचीनं नीलतन्त्रं शिवप्रियम्॥४॥
ताराकल्पं शक्तिकल्पं शक्तिसारं तथैव च।
रुद्रयामलकञ्चैव नीलसारस्वतं तथा॥५॥
लिङ्गतन्त्रं योनितन्त्रं षोढातन्त्रं महामतम्।
तारायाः कुलसर्वस्वं ऊद्ध्वाम्नायं विशेषतः॥६॥
नानाशास्त्राणि चालोक्य तारायां मन्त्रसिद्धये।
वक्ष्ये रहस्यं ताराया ब्रह्मानन्दो हिताय वै॥७॥

नानाशास्त्रार्थविलोकनपूर्वकं श्रीमत्तारादेव्या रहस्यं धर्मकामार्थमोक्षाणां तारामन्त्रेण दायकं सकलगुरुतं प्रातःकृत्यादिक्रिया ज्ञानार्थ देवतामन्त्रनिरूपणादिग्रन्थः साधकहिताय ब्रह्मानन्देन मया यत्नेन क्रियते।

तारासार, तारानिगम, महानील, महाचीन, नीलतन्त्र, ताराकल्प, शक्तिकल्प, शक्तिसार, रुद्रयामल, नीलसारस्वत, लिङ्गतन्त्र, योनितन्त्र, षोढ़ातन्त्र, ताराकुल सर्वस्व, विशेष रूप से ऊर्ध्वाम्नाय एवं अन्य विविध शास्त्रों की आलोचना करके तारामन्त्र सिद्धि के लिए मैं ब्रह्मानन्द सबकी हितकामानार्थ यह तारारहस्य कहता हूँ॥ ४-७॥

प्रथमे निगमे कल्पे रत्नद्वीपे सुरालये।
श्रुत्वा कालीमुखाद् वाक्यं न च हृष्टः सदाशिवः॥८॥

मैं ब्रह्मानन्द यत्न के साथ विविधशास्त्रार्थ का अवलोकन तथा विचार करके प्रातःकृत्यादि क्रियाज्ञान तथा साधक गण का हितसाधन करने के लिए श्रीमत्तारा देवी के रहस्य का प्रणयन करता हूँ। इसमें सभी गुरुवर्ग के मत को सन्निवेशित किया गया है। इसमें जो तारामन्त्र लिपिबद्ध है, उसकी साधना करने से धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्रथम निगमकल्प में सुरालय में समासीन सदाशिव देवी कालिका के मुखकमल से निःसृत वाक्य का श्रवण करके परितृप्ति तथा सन्तोष की प्राप्ति नहीं कर सके॥ ८॥

पुनः पुनः पृच्छमानः प्रश्नञ्चैवाकरोच्छिवाम्।
यदा मूर्त्या करालास्यो रावणो नाशितः पुरा॥९॥
वराभयकरा देवी खड्गमुण्डधरा परा।
लोलजिह्वा चोग्ररूपा काली[1] सर्वैः सुपूजिता॥१०॥

इसी कारण वे शिवा से पुनः-पुनः जिज्ञासा करने लगे। उन्होंने पूछा-जिस मूर्त्ति से कराल रावण का संहार किया था, वह मूर्त्ति हाथों में वरामयदात्री मुद्रा वाली तथा खड्ग मुण्डधारी हैं, जिनकी जिह्वा निरन्तर लपलपाती रहती है। वे उग्ररूपा कालिका देवी सभी द्वारा सविशेष रूप से पूजिता हैं॥ ९-१०॥

तदा चिन्तान्विता देवा रुद्रार्थं कृतनिश्चयाः[2]।
देवताभिः समं ब्रह्मा स्तुतिं कर्त्तुं समागतः॥११॥

हे प्रिये! उस समय रुद्र हेतु सभी देवता चिन्तित होकर ब्रह्मा के स ाथ स्तव करने के लिए समागत हो गये॥ ११॥

दृष्ट्वा तान् मोक्षदा देवी कवित्वधनदायिनी।
प्राप्तलज्जा महादेवी दक्षिणे खड्गमावहत्[3]॥१२॥
लज्जया नम्रवक्त्रा च तस्माल्लम्बोदरी परा।
रुद्राद्विगलितं वासो ब्रह्मा चर्माम्बरं ददौ[4]॥१३॥

---

१. तारा-इति पाठान्तरम्। २. रुद्रार्थं सर्वदा प्रिये-इति पाठान्तरम्। ३. खड्गमानयेत्-इति पाठान्तरम। ४. दधौ-इति पाठान्तरम्।

कवित्वघनप्रदा, मोक्षदा, महादेवी कालिका इन सब देवताओं का दर्शन करके लज्जिता होकर अधोवदन हो गईं तथा खड्ग उठाया। इसी समय रुद्र का पहना चर्माम्बर विगलित हो गया (खिसक पड़ा), तब ब्रह्मा ने उसे ग्रहण किया॥ १२-१३॥

काञ्चीमुद्रां गृहीत्वा[१] च कर्त्रीं कृत्वाऽथ दक्षिणे।
भूमौ च मुकुटं क्षिप्त्वा तत्र रुद्रं समाह्वयत्॥१४॥
भूमौ निपत्य देवेशः पपात चरणान्तिके।
अयुतं द्वादशं देवि! पुस्तकं चावलोकितम्॥१५॥
कलां वक्तुं न शक्तोऽहं वद योगं सुरेश्वरि।
पूज्ये! मे[२] कालिके! देवि! प्रसीद भक्तवत्सले!॥१६॥

तदनन्तर काञ्चीमुद्रा तथा दाहिने हाथ में कर्त्री (यह एक मुद्राविशेष है। इसी प्रकार खड्ग को भी कर्त्री कहते हैं।) लेकर भूमि पर मुकुट फेंका तथा वहाँ रुद्र को लाईं। तब देवदेव महादेव भूमि पर उनके चरणों के निकट गिर पड़े। बोले-'हे देवि! मैंने १२०००० बार पुस्तकों का अवलोकन किया है। तथापि इसका वर्णन करने का सामर्थ्य कलामात्र भी नहीं है (काल का अंश ही कला है)। अतएव हे सुरेश्वरि! आप मुझको तन्त्र का उपदेश करें। हे देवि! हे भक्तवत्सले! हे कालिके! मुझ पर प्रसन्न होइये'॥ १४-१६॥

श्रुत्वा वाक्यं शिवस्यापि हसित्वोवाच तारिणी।
त्वद्रूपाः पुरुषाः सर्वे मद्रूपाः सकलाः स्त्रियः॥१७॥
इदं योगं महादेव! भावयस्व दिने दिने।
पादपद्मे ततो नीलपद्मं दत्तं मनोहरम्॥१८॥

भगवती तारिणी ने शिव वाक्य श्रवण करके सहास्य कहना प्रारम्भ किया-'हे महादेव! आप प्रतिदिन कहते हैं कि 'स्त्री मात्र ही तुम्हारा तथा पुरुष मात्र ही मेरा रूप है' अर्थात् स्वभावतः आप मुझसे अभिन्न हैं। इस उत्तम योग भावना को करिये।' देवी के यह कहने पर महादेव ने देवी के चरणकमल पर नीलकमल अर्पित किया॥ १७-१८॥

गृहीत्वा वामहस्तेन तत्तोयैरभिषिच्य च।
रुद्रदत्तं पानपात्रं विधृतं वामपाणिना ॥१९॥

---

१. प्रगृहीत्वा इति पाठान्तरम्। २. मातर्मे इति पाठान्तरम्।

देवी ने वामहस्त से उसे स्वीकार किया तथा उसके जल से अभिषेकोपरान्त रुद्र द्वारा प्रदत्त पानपात्र (मद्यपात्र) को वामहस्त में धारण किया॥ १९॥

एतेन तारा सा जाता शीर्षेऽक्षोभ्यो भुजङ्गमः।
महाकालः स एव स्यात्तारारूपे[१] जगत्त्रये ॥२०॥

इससे ही उनका तारारूपेण आविर्भाव हो गया तथा मस्तक पर अक्षोभ्य नाग स्थित हो गया। महादेव ने भी महाकाल मूर्त्ति को धारण कर लिया। इसी प्रकार से जगत् में तारारूप की अवतारणा कही गयी है॥ २०॥

यस्याश्च स्मरणे सद्यो भोगमोक्षौ करस्थितौ।[२]
एवम्भूता महादेवी ब्रह्माण्डशून्यमध्यगा ॥२१॥
सृष्टिस्थितिकरी देवी तारारूपा दयान्विता।[३]
द्वितीये चैव शून्यान्ते सुविराड्रूपधारिणी ॥२२॥

तारा रूप का जो स्मरण करते हैं, उनको भुक्ति तथा मुक्ति करतलगत है। ऐसी महादेवी ब्रह्माण्डशून्य में अन्तर्गामिनी होकर तारारूप से गुणत्रय के द्वारा सबकी सृष्टि करती हैं। वे द्वितीय शून्य का आश्रय लेकर समस्त भुवनव्यापी विराट्रूप से आविर्भूत तथा प्रकटित होती हैं॥ २१-२२॥

तृतीये च महाशून्ये तडित्कोटिसमप्रभा।
निराकारा निराधारा तारा सर्वार्थसाधिका ॥२३॥

तृतीय महाशून्य में अवस्थित होकर तड़ित् कोटि के समान ये महाप्रभा से अवस्थान करती हैं। वे निराकारा तथा निराधारा हैं। अर्थात् उनका कोई आकार नहीं है तथा आधार भी नहीं है। वे सर्वार्थ साधिका हैं॥ २३॥

चतुर्थ शून्यमाश्रित्य विष्णुः पालयते ध्रुवम्।
तस्माज्जातश्चतुर्वक्त्रः सृष्टिं वितनुते ध्रुवम् ॥२४॥

वे चतुर्थ शून्य का आश्रय लेकर विष्णुरूप से पोषण करती हैं। वहीं से चतुर्मुख ब्रह्मा आविर्भूत होकर सृष्टि विधान में प्रवृत्त होते हैं॥ २४॥

पञ्चशून्ये महादेवी शिवरूपा त्रिलोचना।
लयं नयति ब्रह्माण्डं महाकालेन लालिता॥२५॥

---

१. स्यात्तारारूपं इति पाठान्तरम्। २. करस्थितः इति पाठान्तरम्। ३. त्रयान्विता इति पाणन्तरम्।

अन्त में वे महादेवी पुनः पञ्चशून्य में त्रिलोचन-शिवरूपा होकर सभी का संहार करते हैं। महाकाल तत्काल सहायक हो जाते हैं॥ २५॥

पुनर्ब्रह्माण्डसिद्ध्यर्थं महाविद्या च तारिणी।
सर्वान्ते कालिकां मूर्तिं त्यक्त्वा वस्त्रं पुनर्दधौ[१]॥२६॥
षष्ठे शून्यमयं ब्रह्म विश्वं विश्वेश्वरं तथा।
महामहाशब्दपरा कालिका बीजतारका॥
पञ्चशून्ये स्थिता तारा सर्वान्ते कालिका स्थिता॥२७॥

(द्वितीया) महाविद्या तारादेवी महाप्रलय के अवसान हो जाने पर कालीमूर्त्ति का त्याग करके पुनः ब्रह्माण्डोत्पत्ति के लिए स्वमूर्त्ति का परिग्रह करती हैं।

इस प्रकार से षष्टशून्य में विश्व तथा विश्वस्वरूप ब्रह्म-यह सभी शून्यमय हो जाते हैं। इस समय महामहा शब्द से परिगणिता, बीजतारका कालिका ही केवल रह जाती हैं। महाप्रलय में स्थित रहती हैं ॥ २६-२७॥

इति श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्य्यब्रह्मानन्दगिरितीर्थावधूत विरचिते तारारहस्ये सर्वरहस्योत्तमे हरगौरी-संवादे प्रथमपटले सृष्टिप्रकरणम्॥ १॥

॥ प्रथमपटल के अन्तर्गत सृष्टिप्रकरण पूर्ण॥

अथ प्रातःकृत्यादिप्रकरणम्

साधको ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय योषादर्शनं[२] कृत्वा च उत्तरास्यः स्वनाभौ दक्षिणहस्तोपरि वामहस्तं दत्त्वा शिरसि द्वादशार्णसरसिरुहोदरसहस्रदलकमलावस्थितं श्वेतवर्णं नानालङ्कारभूषितं रक्तशक्ति वामभागं त्रिनयनं बिम्बाधरं शक्तिवदनारविन्दं गुरुं समालोकयन्[३] हृष्टमानसं स्वस्तिकासनस्थं विभाव्य मानसोपचारैराराध्य ऐँ इति अष्टोत्तरशतं जप्त्वा जपं समर्प्य प्रणमेत्।

अब साधक ब्राह्ममुहूर्त में उठकर योपादर्शन (शक्तिरूपी ज्योतिदर्शन) करके उत्तरमुखी होकर अपनी नाभि पर दाहिनी हथेली को रखकर उस पर बायीं हथेली रखें। शिरस्थ द्वादशाक्षरात्मक पद्म में सहस्रदल कमल स्थित हैं। वहाँ विविध भूषणों से अलंकृत रक्तवर्णा शक्ति वाम भाग में अर्थात् सद्गुरु के वामभाग में स्थित हैं। वे सद्गुरु श्वेतवर्ण से शोभित, नयनत्रय युक्त बिम्बाधर विमण्डित शक्ति के वदनारविन्द के दर्शन में चित्त लगाये, अत्यन्त हर्प से आविष्ट तथा स्वस्तिकासनस्थ

---

१. पुनर्ययौ इति पाठान्तरम्। २. योषादर्शन अर्थात् शक्तिरूपी ज्योतिदर्शन। ३. समालोकयस्तं।

हैं। ऐसे गुरुरूपी शिव की सम्यक् रूपेण भावना तथा मानसोपचारों से आराधना करके 'ऐं' मन्त्र का १०८ जप करें तथा उसका समर्पण करके प्रणाम करें।

ॐ अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥२८॥

प्रमाणमन्त्र–जो अखण्ड मण्डलाकार चराचर विश्व में व्याप्त होकर स्थित हैं, जो अपनी दिव्यदृष्टि से इस परमपद का दर्शन करता है, उन गुरु को प्रणाम॥ २८॥

ॐ अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥२९॥

जो ज्ञानरूप अंजन शलाका से अज्ञानरूपी अन्धकार से अन्धीभूत व्यक्ति के नेत्रों का उन्मीलन करते हैं, उन गुरु को प्रणाम॥ २९॥

उत्थाय पश्चिमे यामे भावयेद् ब्रह्मरन्ध्रतः[१]।
रक्तशक्त्या समायुक्तं शुक्ररूपं महेश्वरम् ॥३०॥
सहस्त्रारे महापद्मं कर्पूरधवलं गुरुम्।
उत्थाय पश्चिमे यामे तच्चैतन्यं समाचरेत् ॥३१॥

रात्रि के पश्चिम याम में (ब्राह्ममुहूर्त में) उठकर अपने ब्रह्मरन्ध्र में रक्तवर्णा शक्ति के साथ सहस्रार महापद्म में विराजित कर्पूर के समान धवन शुभ्ररूप अर्थात् श्वेतवीर्य रूप गुरुरूप महेश्वर की भावना तथा चैतन्यमय आत्मा का अनुभव करें॥ ३०–३१॥

सर्वविद्यासु सर्वत्र प्रातःकृत्यादिकर्मसु।
ध्यानयोगे वामहस्ते दक्षिणं परिधारयेत्॥३२॥
स्वनाभौ दक्षिणे हस्ते वामहस्तं प्रदापयेत्।
भावयेच्च सहस्त्रारे श्रीगुरुं शक्तियुक्तकम्॥३३॥

समस्त विद्या (हेतु), प्रातःकृत्यादि कर्म में, ध्यानयोग में सर्वत्र वामहस्त के ऊपर दक्षिण हस्त की (ध्यानासनार्थ) स्थापना करें। विविध शास्त्रानुकूल प्रातःकृत्यादि वचनों के तारा उपासना विषय में नाभि देश पर दक्षिण हस्त के ऊपर वामहस्त की स्थापना करना होगा। उस स्थिति में सहस्रारस्थ शक्तियुक्त श्रीगुरु की भावना करें॥ ३२–३३॥

---

१. भावयेद् स्वगुरुं ततः इति पाठान्तरम्।

ताराविद्यासु सर्वासु भावनादौ व्यतिक्रमः।
स्वनाभौ पाण्योर्योगश्च भूतशुद्ध्यादिके शिवे!॥३४॥

महानीलतन्त्र में कहा गया है- समस्त ताराविद्या में भावनादि का व्यतिक्रम होता है। स्वनाभि पर उभयहस्त का योग करना चाहिए। भूतशुद्धि आदि में भी यही विधि अपनानी चाहिए॥ ३४॥

सहस्रारे महापद्मे कुन्देन्दुसदृशप्रभम्[१]।
रक्तशक्त्या समायुक्तं भावयेत् साधकाग्रणीः॥३५॥

इस अवस्था में सहस्रार महायज्ञ में इन्दु तथा कुन्द के समान रक्तवर्णा शक्तियुक्त श्रीगुरु की भावना करनी चाहिए॥ ३५॥

प्रातः शिरसि शुक्लाब्जे द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम्।
वराभयकरं शान्तं देव्याश्च वदनाम्बुजम्॥३६॥
दृष्ट्वा हृष्टं ब्रह्ममयं परब्रह्मस्वरूपिणम्।
नानालङ्कारसंयुक्तं भावयेत् स्वस्तिकासने॥३७॥

तारानिगमादि में भी कहा गया है-प्रातःकाल मस्तक पर श्वेतपद्म में श्रीगुरु का ध्यान एवं चिन्तन करें। उनके दो नेत्र, दो हाथ हैं। हाथ में वर तथा अभयमुद्रा स्थित हैं। उनकी प्रकृति शान्तिगुण का देवी के श्रीमुखकमल दर्शन से उनका सातिशय हृदयानन्द उपस्थित हो गया है। वे साक्षात् ब्रह्ममय तथा परब्रह्ममय हैं। वे नाना अलंकार भूषित, सर्वज्ञानप्रद तथा ज्ञानरूप हैं तथा स्वस्तिकासन पर आसीन हैं॥ ३६-३७॥

सर्वज्ञानप्रदं देवं ज्ञानानन्दस्वरूपिणम्।
तथा च वाग्भवं बीजं सर्वज्ञानविशुद्धये॥३८॥
न जप्त्वा वाग्भवं बीजं तारिणीं यस्तु भावयेत्।
न सिद्धिस्तस्य देवेश! विघ्नस्तस्य क्रियासु च॥३९॥

इस प्रकार से गुरु का ध्यानानुभव करें तथा सर्वज्ञान विशुद्धि हेतु वाग्भव बीज 'ऐं' का (अथवा मूलमन्त्र 'ॐ ऐं ह्रीं ह्रीं तारादेव्यै नमः') 'नमः' के साथ जप करें। जो व्यक्ति बिना वाग्भव बीज का जप किये तारादेवी का ध्यान करता है, उसे कभी भी कार्यसिद्धि नहीं होती। पग-पग पर विघ्न होते हैं॥ ३८-३९॥

---

१. इन्दुकुन्दसमप्रभं इति पाठान्तरम्!

प्रातः शिरसि शुक्लाब्जे गुरुं सम्भाव्य यत्नतः।
जप्त्वा तु वाग्भवं बीजं सर्वज्ञानविशुद्धये॥
[1]संजप्त्वां वाग्भवं बीजं प्रणमेच्च पुनः पुनः॥४०॥

शक्तिसारतन्त्र में कहते हैं कि नित्य प्रातः उठकर अपने शिरस्थ श्वेतवर्ण कमलमध्य में श्रीगुरु की भावना करके तब सर्वज्ञान विशुद्धि हेतु वाग्भव बीज जपें। वाग्भव बीज का जप न करने पर बारम्बार प्रणाम करें॥ ४०॥

मन्त्रद्वयेन तूक्तेन[2] प्रणमेत् श्रीगुरुं सदा।
तारामन्त्रविशेषेण कुलोक्तेन द्वयेन च॥४१॥

सर्वसाधारण ब्रह्मखण्डोक्त मन्त्रोच्चार करके पुनः-पुनः प्रणाम करें। इसमें प्राणायांम चार बार अवश्य करना चाहिए। मन्त्रद्वययुक्त तारामन्त्र विशेष तथा कुलोक्त मन्त्रद्वय के साथ सदा श्रीगुरु को प्रणाम करें। (मन्त्रद्वय हैं-ऊं ह्रीं हुं हुं नमः। ऐं ह्रीं ऊं ऐं ह्रीं फट् स्वाहा।)॥ ४१॥

प्रथमपटले प्रातःकृत्यादिप्रकरणम्

ततः स्वस्तिकासनस्थः पृथ्वीमण्डलात् सार्द्धत्रिवलयान्वितां[3] रविकोटिसमप्रभां चन्द्रकोटिसुशीतलां स्वयम्भूलिङ्गवेष्टितां निराकारस्वरूपां परब्रह्ममयीं कुण्डलिनीं ज्ञानानन्दमुदितमानसां महायोगस्वरूपिणीं मेरुदण्डप्रकाश्य पुरतः स्वयम्भू-कनक-वर्णशीर्षतः पद्मवनसमुद्भवां बहुतरप्रणवानामेककृतशब्दविभागमयीं तत्त्वस्वरूपाम् इडापिङ्गलोर्मध्ये सुषुम्नामध्यमध्यतः चित्रिणीं ब्रह्मनाडीं प्रवेशयेत्। द्वितीयं पद्मं वामतो विभाव्य मृदुमन्दगतिमयीं लोलीभूतां हृत्पद्मे विश्राम्य गुरुयोगं विभाव्य च मानसैः पूजयेत्।

तत्पश्चात् स्वस्तिकासनासीन होकर जो सार्द्धत्रिवलयावेष्टिता हैं, जिनकी प्रभा कोटि-कोटि सूर्यवत् है, जो कोटि-कोटि चन्द्र के समान परमशीतल भावविष्टा तथा स्वयम्भूलिङ्ग को आवेष्टित करके स्थित हैं, जो निराकाररूपा तथा परब्रह्ममयी हैं, जो ज्ञानानन्द से मुदित चिन्ता तथा महायोग स्वरूपा हैं, जो पद्मवन समुद्भवा हैं, जो बहुतर प्रवण में एकीकृत शब्द विभागा है, उन तत्त्वरूपिणी कुण्डलिनी को मूलाधार से इड़ा तथा पिंगला मध्य में विराजिता-सुषुम्नामध्यगा ब्रह्मनाड़ी में प्रवेश करायें। तदनन्तर गुरुयोग से (गुरु से युक्त करके) उनकी भावना करने के उपरान्त मान-सोपचार से उनको पूजित करें।

---

१. न जप्त्वा इति पाठान्तर। २. युक्तेन इति पाठान्तरम्। ३. सार्द्धत्रिवलसन्निमां इति पाठान्तरम्।

विभावयेत् सदा भक्त्या सर्वाद्यां भुजगाकृतिम्।
भूपद्मे लिङ्गमावेष्ट्य राजते ब्रह्मरूपिणी ॥४२॥

जो भूपद्म में लिंग (स्वयम्भू लिंग) को घेरकर विराजित हैं, जो सबकी आदि हैं, जो भुजंगाकृति हैं, उन ब्रह्मस्वरूपा कुण्डली का भक्ति के साथ अनुभव तथा अनुधावन करें॥ ४२॥

स्वयम्भूनाम्नि योनौ च लिङ्गे[1] न भावयेच्छिवम्।
शतकोटिं जपन् देवि! तस्य सिद्धिर्न चैव हि ॥४३॥

तारासार तन्त्र रुद्रयामल आदि में भी कहते हैं कि जो व्यक्ति स्वयम्भू नामक लिंग में कुण्डलिनी की भावना नहीं करता वह शतकोटि जप करके भी सिद्धिलाभ नहीं कर सकता॥ ४३॥

पुरतो मेरुदण्डस्य त्रिगुणां गुणशालिनीम्।
इडापिङ्गलयोर्मध्ये सुषुम्नामध्यमध्यतः ॥४४॥
चालेयच्छ्यामलां शुद्धिं ज्ञानसन्दीपनीं पराम्।
विद्युत्कोटिप्रभायुक्तां विषतन्तुतनीयसीम् ॥४५॥

जो मृणालतन्तुवत् अतिसूक्ष्म कलेवरा हैं, जो सूर्यकोटिसमप्रभ हैं, जो साक्षात् शुद्धस्वरूपा तथा सबके लिए ज्ञानमार्ग प्रकाशिका हैं, उन श्यामवर्णा गुणत्रयविभूषण, स्वगुणशोभिता कुण्डलिनी की मेरुदण्ड के सम्मुख इड़ा तथा पिंगला मध्यस्थित सुषुम्ना में चालना करें॥ ४४-४५॥

मध्यतो ब्रह्मनाड्या च रविकोटिसमप्रभाम्।
द्वितीये वामतो बुद्ध्या गुरोरन्तिकमानयेत् ॥४६॥
तत्रानीय परां शुद्धां ज्ञानसन्दीपनीं शिवाम्।
तडित्कोटिप्रभायुक्तां ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ॥४७॥
परां कुण्डलिनीशक्तिं साकारां परिभावयेत्।
तस्य मध्ये समानीय रक्तवर्णां विभावयेत् ॥४८॥

तत्पश्चात् बुद्धि के साथ बायीं ओर द्वितीय पद्म में गुरु को आनयन करके उन ज्ञानमार्गप्रकाशिका, तड़ित् कोटि प्रभायुता, ब्रह्मविष्णुशिवरूपा, परमकल्याणरूपा, सत्वगुणमयी कुण्डलिनी शक्ति की साकाररूपेण भावना करें। तदनन्तर उसे मध्य में आनयन करके उनका चिन्तन रक्तवर्ण रूप में करें॥ ४६-४८॥

---

१. नैव लिङ्गे इति पाठान्तरम्।

तदा सिद्धिमवाप्नोति नान्यथा कल्पकोटिभिः।
ज्ञानानन्दमयीं साक्षात् सर्वानन्दप्रदायिनीम्॥४९॥
नानालङ्कारभूषाढ्यां भावयेद् गुरुसन्निधौ।
मानसैः पूजयित्वा च मूलमन्त्रं शतं जपेत्॥५०॥

ऐसा करने पर सिद्धिलाभ होता है। ऐसा जो नहीं करता वह कोटि-कोटि कल्प में भी सिद्धि नहीं पा सकता। वे साक्षात् ज्ञानानन्दमयी तथा सर्वानन्दप्रदा हैं।

विविध अलंकार भूषित परमशोभाशाली कुण्डलिनी की भावना गुरुसान्निध्य में करके मानस उपचार द्वारा पूजा करने के अनन्तर १०० बार मूलमन्त्र का जप करना चाहिए॥ ४९-५०॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा चिन्तयेत् परदेवताम्।
कालत्रिपुरसुन्दर्य्या रूपं तत्र नियोजयेत्।
उद्यद्भानुसहस्राभां द्विभुजां शिवसुन्दरीम्॥५१॥

इन परमदेवता का ध्यान कृतांजलि बद्ध होकर करें। इसमें बाला त्रिपुरसुन्दरी के रूप को नियोजित करें। वे उदीयमान भानुसहस्र के समान प्रभायुता भुजद्वयशोभिता त्रिपुरसुन्दरी हैं॥ ५१॥

प्रातःकृत्यं विधायाथ मूलमन्त्रं जपेत्तु यः।
तस्य सिद्धिर्महादेवि! हृदये योगिनीगणैः॥५२॥

इस प्रकार से शास्त्रोक्त प्रात:कृत्य का विधान करके मूलमन्त्र जप में प्रवृत्त होना चाहिए। यह होने पर हृदय में योगिनीगण द्वारा सिद्धि प्राप्त होती है॥ ५२॥

एतेन गुरुसन्निधौ कुण्डलिनीं साकारां विभाव्य मानसैः सम्पूज्य मूलमष्टोत्तरशतं जप्त्वा समाप्य प्रणमेत्। ततो भूमौ प्रणम्य कुमारी ब्राह्मणांश्च दृष्ट्वा पठेत्।

ॐ अहं देवो न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवास्मि न शोकभाक्।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान्॥५३॥
ब्रह्मानन्दसदानन्दपरो ज्ञानविधायकः।
तारकाभक्त आनन्दपूर्णानन्दः सदाशिवः॥५४॥
भैरवोऽहं सुधाढ्योऽहं तत्त्वज्ञोऽहं कुलस्त्रियः।
गुरुप्रसादवानस्मि शक्तिसाधकसेवकः॥५५॥

इससे यह स्पष्टतः ज्ञात होता है कि गुरु के सान्निध्य में कुण्डलिनी की साकाररूपेण चिन्तना करके उनकी आराधना मानसोपचार से करके अष्टोत्तरशत विधान से मूलमन्त्र का जप तथा जपसमर्पण करके उनको प्रणाम करें। तदनन्तर भूमि पर प्रणामान्त में कुमारीगण एवं विप्रवर्ग के दर्शनोपरान्त यह स्तव पढ़ें–

मैं साक्षात् देवता हूँ। मैं अन्य कोई नहीं हूँ। मैं ही ब्रह्म हूँ। इसी कारण मैं लोकों का विषय नहीं हूँ। मैं सत्स्वरूप, चित्स्वरूप अथवा आनन्दस्वरूप हूँ। मैं नित्यमुक्त स्वभाववान् हूँ।

मैं ब्रह्मानन्द, सदानन्द तथा परमज्ञान विधायक हूँ। मैं तारा का भक्त, मैं ज्ञानस्वरूप, मैं पूर्णानन्द सदाशिव हूँ।

मैं भैरव, सुघाड्य कुलस्त्रीगणों का तत्त्वज्ञ हूँ। मैंने गुरुकृपा प्राप्त की है। मैं शक्तिसाधकगण का सेवक हूँ॥ ५३–५५॥

रतनानन्दः कुलानन्दः कुमारीदास एव च।
कुमारीवणिकोऽहञ्च ताराचरणनायकः ॥५६॥

इति तारानिगमोक्तं पठित्वा बहिर्गच्छेत्।

प्रातःकृत्यं विना देवि! न सिद्धिर्जायते शिवे!
न पूजाफलमाप्नोति मन्त्रजापस्य निश्चितम्॥५७॥

मैं ही लतानन्द तथा कुलानन्द हूँ। मैं कुमारीगण का दास तथा उनका वणिक् रूप हूँ। तारा का चरण मेरा अधिनायक है।

तारानिगमानुसार यह पाठ करके बाहर जायें। हे देवि! प्रातःकृत्य बिना कभी सिद्धिलाभ नहीं होता। पूजा करके भी वह कोई फल प्राप्त नहीं कर सकता। उसे मन्त्र जप कर भी इष्टसिद्धि नहीं मिलती॥ ५६–५७॥

सर्वा क्रिया निष्फला स्याद् वैदिकी तान्त्रिकी तथा।
प्रातःकृत्यविहीनस्य शौचहीना यथा क्रिया॥५८॥

उसकी तान्त्रिकी तथा वैदिकी आदि सभी क्रियाएँ नष्ट हो जाती हैं। प्रातःकृत्य के अभाव में सभी क्रियाएँ शौचहीन (पवित्रताहीन) हो जाती हैं॥ ५८॥

॥ इति श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्य्यब्रह्मानन्दगिरितीर्थस्वामिकुलावधूत विरचिते तारारहस्ये सर्वरहस्योत्तमे हरगौरी-संवादे प्रथमपटले प्रातःकृत्यादिप्रकरणम्॥

॥ प्रथमपटलान्तर्गत द्वितीय प्रकरण पूर्ण॥

अथ तारागायत्री प्रकरणम्

ततः प्रातःकृत्यानन्तरं स्नानम्। साधकानां वैदिकी तान्त्रिकी प्रातः कालावधि महानिशापर्य्यन्तं क्रिया वक्तव्या। शिवपूजा तु वैदिकतान्त्रिकयोरेकत्वात् तत्पूजनञ्च। अतो नद्यादौ गत्वा मज्जनं कृत्वा "ओमद्येत्यादि श्रीमत्तारादेव्याः प्रीतयेऽस्मिन् जले स्नानमहं करिष्ये" इति सङ्कल्प्य जले त्रिकोणं विलिखेत्। तथा च तारानिगमे-

देव्याश्च प्रीतये स्नानं कर्त्तव्यं तन्त्रवेदिभिः।
तीर्थमावाह्य तोये च जप्त्वा मज्जनपूर्वतः॥५९॥

प्रातः कृत्योपरान्त स्नान करना चाहिए। साधकगण प्रातः से महानिशा तक वैदिक तथा तान्त्रिक सभी क्रिया करें। शिव पूजा भी इसी नियम से करनी चाहिए। क्योंकि वैदिक तथा तान्त्रिक दोनों शिवपूजन का एक्य के कारण उनकी पूजा विहित है। इसी कारण नदी आदि में जाकर तथा स्नानोपरान्त 'ॐ अद्य अमुक मास, अमुक पक्ष, अमुकतिथि' इत्यादि मूलोक्त संकल्पानुसार श्रीमद् तारादेवी की प्रसन्नतार्थ तन्त्रज्ञ स्नान करें। जल में तीर्थों का आह्वान करके स्नानपूर्वक जप करें॥ ५९॥

तत्रैव रुद्रयामले वा-

यत्र तत्र महाविद्या साधकैः समुपासिता।
तत्र तत्र त्रिकोणञ्च अधोमुखमुदीरितम्
देवत्रिकोणं कर्त्तव्यं ऊर्ध्वास्यं विधिसम्मतम्॥६०॥

रुद्रयामल में कहा है कि जहाँ-जहाँ महादेवी की उपासना करनी हो, वहाँ-वहाँ त्रिकोणाङ्कन करें। देवी का त्रिकोण निम्नाभिमुखी ∇ हो। देवता का त्रिकोण ऊर्ध्वमुखी ∆ हो॥ ६०॥

तत्र-

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति!॥
नर्मदे सिन्धु-कावेरि! जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥६१॥

इति अङ्कुशमुद्रया सूर्य्यमण्डलात्तीर्थमाबाह्य प्राणायामं कराङ्गषडङ्गे विन्यस्य देवीरूपं विचिन्त्य आत्मानं तारामयं विभाव्य मूलं शीर्षे दशधा, जले दशधा जप्त्वा त्रिकोणवृत्तचतुरस्त्रं विलिख्य धेनुयोनिमत्स्याङ्कुशमुद्राः प्रदर्श्य सूर्य्याभिमुखं द्वादशधा वारि निक्षिप्य मूलने मूर्द्धानं सप्तधा अभिषिञ्चेत् तत्र इष्टदेवताचरणानिःसृतजलेन उदङ्मुखः स्नायात्।

तारार्णवादौ स्नानं यथा-

तीर्थमावाह्य तोये च प्राणायामषडङ्गकौ।
देवीरूपं जले ध्यायेदात्मानं तारिणीमयम्॥६२॥

इस त्रिकोण में पहले 'गङ्गे च यमुने चैव' इत्यादि मन्त्रोच्चार करते-करते अंकुश मुद्रा द्वारा सूर्यमण्डल से तीर्थ आह्वान करके कराङ्गन्यास, षडङ्गन्यास तथा प्राणायाम विन्यास करके देवीरूप का चिन्तन एवं आत्मा की तारामय भावना करना होगा। तत्पश्चात् मूलमन्त्र से शीर्ष में १० बार, हृदय में १० बार तथा जल में १० बार जप तथा त्रिकोणवृत्त, चतुरस्र बनाकर धेनुमुद्रा, योनिमुद्रा, मत्स्यमुद्रा, अंकुशमुद्रा प्रदर्शन करके सूर्याभिमुख होकर १२ बार जल निक्षेप करके मूलमन्त्रोच्चारण करें। तत्पश्चात् ७ बार मस्तक का जलसिंचन करें। तदनन्तर उत्तरमुख होकर इष्टदेवता के चरणों से विगलित जल से स्नान करें। तारार्णवादी में कहते हैं-जल में तीर्थ आह्वान तथा जल में ही प्राणायाम के साथ षडङ्गविन्यास करके जल में ही देवी रूप तथा आत्मा के तारिणीरूप का ध्यान करें॥ ६१-६२॥

शीर्षे हृदि जले जप्त्वा दशधा मूलमन्त्रकम्।
जले त्रिकोणवृत्तञ्च चतुरस्रं लिखेद्बुधः॥६३॥

तदनन्तर मस्तक, हृदय तथा जल में मूलमन्त्र का १०-१० बार जप करके जल में ही त्रिकोण तथा त्रिकोण के बाहर चतुरस्र बनायें॥ ६३॥

अङ्कुशं धेनुमुद्राञ्च योनिं मत्स्यं प्रदर्शयेत्।
रवौ रविजलं दत्त्वा सिञ्चेच्छौरं तु सप्तधा[1]॥६४॥

इति स्नानम्

तथा च महाचीनमहातारार्णवादौ-

प्रकुर्य्यादवैदिकस्नानं तान्त्रिकं तदनन्तरम्।
सन्ध्याञ्च वैदिकीं कृत्वा तान्त्रिकीं स्वयमाचरेत्॥६५॥

तदनन्तर अंकुशमुद्रा, धेनुमुद्रा, योनिमुद्रा, मत्स्यमुद्रा प्रदर्शन करके सूर्याभिमुख (सूर्य का जल प्रदान करके) हो सात बार मस्तक अभिषिक्त करें। यही स्नानविधान है।

महाचीनतन्त्र तथा महातारार्णवादि में कहते हैं कि पहले वैदिक स्नान तथा तत्पश्चात् तान्त्रिक सन्ध्या सम्पन्न करें॥ ६४-६५॥

---

१. मूर्द्धानं सप्तधा सिञ्चेत् इति पाठान्तरम्।

जले त्रिकोणं संलिख्य तीर्थान्यावाहयेत्ततः।
तत्त्वेनाचमनं कृत्वा वह्निजायान्तमन्त्रतः॥६६॥
कुशैः समूलैरुदकं दद्याच्छीष च साधकः।
ततश्च भूमौ दातव्यं सप्तधा साधकोत्तमः॥६७॥

तत्पश्चात् जल में त्रिकोण बनाकर तीर्थावाहन करके उसके द्वारा स्वाहान्त (जिस मन्त्र के अन्त में स्वाहा हो) मन्त्र द्वारा आचमन करें।

मूलयुक्त कुश से मस्तक पर जल प्रदान करें। तदनन्तर भूमि पर सात बार जल प्रदान करें॥ ६६-६७॥

वामहस्ते जलं नीत्वा चाच्छाद्य दक्षिणेन च।
मन्त्रं वारत्रयं जप्त्वा पञ्च वर्गान् जपेत्ततः॥
क्षान्तं चन्द्रसमायुक्तं सप्तवर्णाद्यमेव च॥६८॥
वह्निबीजं पृथिव्याश्च वारुणां तदनन्तरम्।
हँ यँ वँ लँ रँ इत्येकजटामन्त्रेऽघमर्षणमन्त्रकम्॥६९॥

बायीं हथेली पर जल लेकर उसे दाहिने हाथ से आच्छादित करके ३ बार मन्त्र जपें। तत्पश्चात् पञ्चवर्ण जपें। क्षान्त=ह। सप्तवर्णाद्य=य। वह्निबीज=र। पृथिवीबीज=ल। वरुणबीज=व। इनको चन्द्र बिन्दु युक्त करने से मन्त्र होगा-हं यं रं लं वं। इसका जप करें। यही एक जपमन्त्र में अघमर्षण मन्त्र है॥ ६८-६९॥

मुद्रया स्नापयेच्छीर्षं गलितोदकविन्दुभिः।
मुद्रा तु तत्त्वमुद्रा स्यात् सन्ध्यायां कुलतर्पणे॥७०॥

मुद्रा प्रदर्शन करके गलित बिन्दु समूह (उंगलियों के छिद्र से टपकते जल) द्वारा मस्तक को ७ बार अभिषिक्त करें। यह तत्वमुद्रा सन्ध्या तथा कुलतर्पण में विहित है॥ ७०॥

तज्जलं दक्षहस्तेन वामनाडीं प्ररोपयन्।
अस्त्रबीजेन[1] मन्त्रेण पुरः पाषाणवज्रके।
ताडयेत् साधकः सर्वसिद्धये ज्ञानसिद्धये॥७१॥

यह जल दाहिने हाथ में लेकर वामनाड़ी में प्ररोपित करके अस्त्र (फट्) बीज द्वारा पुरोभाग में कल्पित (मानसिक) पाषाण वज्र को (पत्थर के टुकड़े को) फेंकें। इससे सर्वसिद्धि तथा आनन्द लाभ होता है॥ ७१॥

कृष्णवर्णं जलं ध्यात्वा पापेन पुरुषेण च।
नाडीनां क्षालनं कृत्वा देहस्य क्षालनं तथा॥७२॥
ततश्च तर्पयेद्देवीममृतानन्दरूपिणीम्।
देवानृषीन् पितृृश्चैव गुरुं परगुरुं ततः॥७३॥
परापरगुरुञ्चैव परमेष्ठिगुरुं ततः।
ततो मूलं समुच्चार्य्य देवीं तारां ततः परम्॥७४॥

यह जल देहस्थ पापपुरुष के स्पर्श से काला हो गया है, यह चिन्तन करना होगा। पाप पुरुष के साथ इस जल का कृष्णवर्ण रूपेण चिन्तन करके समस्त नाड़ियों के साथ देह का प्रक्षालन (चिन्तन से) करके अमृतानन्द स्वरूपा देवी के साथ देवगण, ऋषिगण, पितृगण, गुरु, परमगुरु, परापरगुरु तथा परमेष्ठिगुरु प्रभृति सबको तर्पण अर्पित करना चाहिए॥ ७२-७४॥

श्रीमदेकजटां पश्चात् तर्पयामि ततः परम्।
प्रकाशशक्तियुक्ताय इदमर्घ्यमहं ददे॥७५॥
मार्त्तण्डमण्डले ध्यात्वा ताराञ्चैकजटां तथा।
गायत्र्यार्घ्यं प्रदद्याच्च त्रयं कुसुमसंयुतम्
गायत्रीञ्च ततो ध्यायेज्जपेद्विंशतिसंख्यकम्॥७६॥

तदनन्तर मूलमन्त्र उच्चारण करके देवी तारा के साथ ही श्रीमद्एकजटा देवी का भी तर्पण करना होगा। तर्पण का मन्त्रार्थ है-'मैं प्रकाश तथा शक्तियुक्ता देवी तारा तथा एकजटा का तर्पण करके उनको अर्घ्यदान करता हूँ।'

तदनन्तर सूर्यमण्डल में देवीतारा तथा एकजटा का ध्यान करें। तदनन्तर पुष्पों के साथ गायत्री का ३ अर्घ्य प्रदान करें। तत्पश्चात् गायत्रीध्यान तथा २००० गायत्री जप करें॥ ७५ -७६॥

जलेऽधोमुखः त्रिकोणं विलिख्य ॐ गङ्गे चेत्यादिना तीर्थमावाह्य योनिमुद्रां प्रदर्श्य ओं आत्मतत्त्वाय स्वाहा, ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा, ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा, इति आचम्य मूलेन कुशेन सप्तधा शीर्षे भूमौ सप्तधा दत्त्वा वामहस्ते जलं नीत्वा दक्षहस्तेनाच्छाद्य तेजोरूपं जलं ध्यात्वा मूलं त्रिवारं तत्र जप्त्वा, हं यं वं लं रं इति त्रिरभिमन्त्र्य गलितोदकविन्दुभिस्तत्त्वमुद्रया मूर्द्धानं सप्तधा अभ्युक्ष्य शेषजलं दक्षहस्तेनादाय इडया आकृष्य देहान्तःपदं प्रक्षाल्य तज्जलं कृष्णवर्णं ध्यात्वा वामकुक्षिस्थितं पापपुरुषेण सह पुरःकल्पितवज्रशिलायां फडिति ताडयेत्। ततो हस्तं प्रक्षाल्य तारां स्मृत्वा एकैकाञ्जलिना ॐ देवांस्तर्पयामि, ॐ ऋषींस्तर्पयामि, ॐ पितॄंस्तर्पयामि, ॐ गुरूंस्तर्पयामि, ॐ

परमगुरूंस्तर्पयामि, ॐ परापरगुरूंस्तर्पयामि; ॐ परमेष्ठिगुरूंस्तर्पयामि। मूलमुच्चार्य्य देवीं तारां श्रीमदेकजटां तर्पयामि स्वाहा, इति त्रिः।

ततो दूर्वाक्षतरक्तपुष्पसहितमर्घ्यं गृहीत्वा ॐ ह्रीं हं सः श्रीसूर्य्याय प्रकाशशक्ति-सहिताय इदमर्घ्यं प्रददे। इति सूर्य्यायार्घ्यं दत्त्वा सूर्य्यमण्डले देवीं ध्यात्वा गायत्रीमुच्चार्य्य सूर्य्यमण्डलस्थायै तारादेव्यै श्रीमदेकजटायै इदमर्घ्यं नमः इति त्रिः।

ततः कृताञ्जलिः-

ॐ प्रातराधारकमले हुतभुङ्मण्डलोपरि।
वाग्बीजरूपां विद्यां तां विद्युत्पटलभास्वराम्॥७७॥
पुष्पबालेक्षुकोदण्डपाशाङ्कुशलसत्कराम्।
स्वेच्छागृहीतवपुषीं गुरुविद्याकरात्मिकाम्॥७८॥
मध्याह्ने हृदयाम्भोजकर्णिकासूर्य्यमण्डले।
कामबीजात्मिकां देवीं अलक्तकरसारुणाम्॥७९॥
प्रसूनबालपुण्ड्रेक्षुचापपाशाङ्कुशान्विताम्।
परिस्तृताञ्च[1] मुख्याभिः षट्त्रिंशत्तत्त्वसेविताम्॥८०॥
सामयज्ञे सरोजस्थे चन्द्रे चन्द्रसमुद्यतिम्।
शक्तिबीजात्मिकां चापबाणपाशाङ्कुशान्विताम्॥८१॥
चिन्तयित्वा भगवतीं नित्याभिः परिवारिताम्।
युगनित्याक्षराकारां घण्टिकावरसन्निभाम्॥८२॥
तारासारगतो[2] ध्यायेद् गायत्रीं तारकामणौ।
त्रिपुराया विशेषेण देव्याश्चैकजटांमणौ॥८३॥

तदनन्तर जल में अधोमुख त्रिकोण अंकित करके 'ॐ गङ्गे च यमुने' आदि मन्त्र से तीर्थावाहन करके योनि मुद्रा प्रदर्शनोपरान्त 'ॐ आत्मतत्वाय स्वाहा, ॐ विद्यातत्वाय स्वाहा, ॐ शिवतत्वाय स्वाहा' मन्त्रत्रय से आचमन करें। तत्पश्चात् मूलमन्त्र से कुश द्वारा सात बार मस्तक पर तथा सात बार पृथिवी पर जल छिड़कें। बायें हाथ में जल लेकर दाहिने हाथ से उसे ढककर उस जल में तेजोरूप का ध्यान करते-करते उस पर मूलमन्त्र का तीन जप करें।

इसके पश्चात् 'हं यं वं लं रं' मन्त्र से विधिपूर्वक तीन बार अभिमन्त्रण तथा तत्वमुद्रा प्रदर्शन करके विगलित हो रहे जल बिन्दुओं से सात बार मस्तक का अभ्युक्षण करके शेष जल को दाहिने हाथ में लेकर वामनासिका से उसे भीतर खींचें

---

१. परिस्मृताञ्च इति पाठान्तरम्। २. तारासारमते इति पाठान्तरम्।

तथा यह चिन्तन करें कि इससे देहस्थ सभी पापों का प्रक्षालन सम्पन्न हो रहा है। इस जल में काले रंग के पुरुष की (पापपुरुष) कल्पना करनी चाहिए और अपने वामकुक्षि स्थित इस पापपुरुष का ताड़न पुरोभाग में कल्पित पत्थरों का ताड़न 'फट्' मन्त्र से करें।

तदनन्तर हस्प्रक्षालन तथा तारा का स्मरण करके एक-एक अंजलि से प्रणव के उच्चारण के साथ यह कहें- मन्त्रार्थ है- मैं देवगण का तर्पण करता हूँ। मैं ऋषिगण का तर्पण करता हूँ। मैं पितृगण का तर्पण करता हूँ। मैं गुरु का तर्पण करता हूँ। मैं परमगुरु का तर्पण करता हूँ। मैं परापर गुरु का तर्पण करता हूँ। मैं परमेष्ठिगुरु का तर्पण करता हूँ। यह कहकर 'मैं मूलमन्त्र द्वारा देवी तारा तथा एकजटा का तर्पण करता हूँ' ऐसे वाक्यों द्वारा 'स्वाहा' को अन्त में कहकर उपर्युक्त सभी का तर्पण करें।

तीन बार यह सब कहकर अक्षत तथा लाल पुष्प के साथ अर्घ्य लेकर 'ॐ ह्रीं हं सः' मन्त्र द्वारा प्रकाश तथा शक्ति युक्त सूर्यदेव को यह अर्घ्य देता हूँ यह कहें। इस प्रकार से सूर्यार्घ्य देकर सूर्यमण्डलस्थ देवी का ध्यान तथा गायत्री का उच्चारण करके सूर्यमण्डल में विराजित देवी तारा तथा देवी एकजटा को अर्घ्यदान करना चाहिए। 'नमः' शब्द अन्त में लगाकर यह अर्घ्य होगा।

तत्पश्चात् अंजलिबद्ध होकर श्लोक ७७ तथा ७८ द्वारा भगवती का चिन्तन करके तारासारतंत्र मतानुसार तारा का मन्त्र से (विशेष रूप से) त्रिपुरा तथा एकजटा के मन्त्र से गायत्री ध्यान करें। श्लोक ७७ तथा ७८ का मन्त्रार्थ यह है-प्रातःकाल आधार पद्म में वह्नि मण्डलोपरि स्थिता वाग् बीजरूपा विद्यारूपिणी विद्युद्दाम के समान परमप्रभायुता, पुष्प-चामर-इक्षु-कोदण्ड-पाश-अंकुश धारिणी, स्वच्छा-देहधारिणी, गुरुविद्या आकारमयी, मध्याह्न में हृदयपद्म कर्णिका स्थित सूर्यमण्डल में कामबीजमयी देवीरूपा, आलता के समान अरुण वर्णवाली देहयुता, पुष्प चामर-इक्षु-धनु-पाश-अंकुश-से शोभा युक्त मुख्य देवीगण से घिरी भगवती का ध्यान करता हूँ॥ ७७-८३॥

इति तारासारोक्तश्रवणात्। त्रिपुरासुन्दरीविषये च गायत्र्या इदं ध्यानम्। तथा नीलसरस्वतीतन्त्रे तारानिगमे च-

तारायै च पदं प्रोच्य विद्महे तदनन्तरम्।
महोग्रायै ततो दद्याद्धीमहीति ततः परम्।
तन्नो देवीति चोच्चार्य्य ततो दद्यात् प्रचोदयात्॥८४॥

तारासार ग्रन्थ में गायत्री का ध्यान इस प्रकार से है-त्रिपुरसुन्दरी साधना में इसी प्रकार की गायत्री का ध्यान करें। साथ ही नीलसरस्वती एवं तारादि के सम्बन्ध में ही यही ध्यान विहित है। पहले तारायै पद लगायें। तदनन्तर 'यथाक्रमेण विद्महे, महोग्रायै, धीमहि, तन्नो देवि, प्रचोदयात्', आदि पद लगायें। मन्त्रोद्धार होगा 'ॐ ह्रीं तारायै विद्महे महोग्रायै च लगायें। मन्त्रोद्धार होगा' 'ॐ ह्रीं तारायै विद्महे महोग्रायै च धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्।' (यदि श्लोक का ही आधार लेते हैं तब २४ अक्षर नहीं होते अतः 'ह्रीं' तथा 'च' का योग किया जाता है)॥ ८४॥

'ॐ ह्रीँ तारायैं विद्महे, महोग्रायै च धीमहि, तन्नो देवी प्रचोदयात्' इति तारानिगमादिनानाग्रन्थसम्मता गायत्री जप्तव्या।

सामान्यमादौ जप्त्वा च दशधा साधकोत्तमः।
विशेषिकां जपेद्विद्यां गायत्रीं सर्वसिद्धिदाम्॥८५॥
शतं वा विंशतिं वापि यो जपेत् साधकाग्रणीः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वयं तारापुरे वसेत्॥८६॥

इस प्रकार तारानिगम आदि विविध ग्रन्थों में इस गायत्री जप को करें। इसमें प्रथमतः सामान्यभाव से ही सर्वसिद्धिप्रदा गायत्री का १० बार जप करें। तत्पश्चात् १०० अथवा २० बार जप करने से साधक सर्वपापमुक्त होकर स्वयं तारापुर में वास करने योग्य हो जाता है॥ ८५-८६॥

गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च ब्रह्मस्त्रीघ्नश्च यो नरः।
गुरुतल्परतो वापि स्नुषायां वा रतो यदि॥८७॥
एतैः पापैर्विमुच्यन्ते सत्यं सत्यं सदाशिव!।
कुमारीगमनाद्दोषो न भूतो न भविष्यति॥८८॥

हे सदाशिव! सत्य कहती हूँ! गोहत्या-ब्रह्महत्या-स्त्रीहत्या-कृतघ्नता-गुरुपत्नीहरण-पुत्रवधूगमन करने से जो पाप होता है वह सभी इस जप मात्र से मुक्त हो जाता है। जो व्यक्ति इस जप को करेगा, वह कुमारीगमन करने पर भी पापलिप्त नहीं होगा॥ ८७-८८॥

ततश्च मुच्यते लोको गायत्रीस्मरणादपि।
गायत्र्या आगमोक्तायाः शतमात्रजपादपि॥८९॥

गायत्री स्मरण से ही उन-उन पापों का परिहार होता है सत्य कहता हूँ। आगमोक्त गायत्री के १०० जप मात्र से सब पाप नष्ट हो जाते हैं॥ ८९॥

एतैः पापैर्विमुच्येत सत्यं सत्यं सुरेश्वर!
एतैः पापैर्विमुक्तश्च विशेषस्मरणादपि।

तस्मान्निगदिता विद्या जप्तव्या सिद्धिमिच्छता॥९०॥
कूर्चबीजं समुद्धृत्य भगवत्येकजटे ततः।
विद्महे घोरदंष्ट्रे च धीमहीति ततः परम्।
तन्नस्तारे ततो जप्त्वा ततो गद्यं प्रचोदयात्॥९१॥

"हुँ भगवत्येकजटे विद्महे, घोरदंष्ट्रे च धीमहि, तन्नस्तारे प्रचोदयात्" इति शतं विंशतिं वा तं जप्त्वा समर्प्य मूलमष्टोत्तरशतं जपेत्।

गायत्रीं परिजप्याथ मूलमन्त्रं जपेन्न च।
सा सन्ध्या निष्फला ज्ञेयाप्यभिचाराय कल्पते॥९२॥
प्रातःसन्ध्याविहीनश्च न च स्नानफलं लभेत्।
मध्याह्नसन्ध्याहीनश्च न पूजाफलमाप्नुयात्॥९३॥

विशेषिका गायत्री का जप भी यही फल प्रदान करता है। इसीलिए सिद्धि चाहने वाले इस ब्रह्मविद्या गायत्री का जप करे।

पहले कूर्चबीज (हूं) का उच्चारण करके 'भगवती एकजटे' कहें। तदनन्तर 'विद्महे घोर दंष्ट्रे धीमहि' पद की सन्धि लगाये। तदन्तर 'तन्नस्तारे' कहकर 'प्रचोदयात्' पद का प्रयोग करें। अब मन्त्रोद्धार होगा-'हूं भगवत्येक जटे विद्महे, घोरदंष्ट्रे धीमहि, तन्नोस्तारे प्रचोदयात्।' इस गायत्री का १०० अथवा २०० बार जप करके १०८ मूलमन्त्र का जाप करना चाहिए। बिना गायत्री जप किये मूलमन्त्र का जप नहीं करें। तब जप निष्फल होता है और साधना अभिचार में परिवर्त्तित हो जाती है।

जो प्रातः सन्ध्या नहीं करता, उसे स्नानफल प्राप्त नहीं होता। मध्याह्न सन्ध्या किये बिना पूजाफल प्राप्ति नहीं होती॥ ९०-९३॥

सायंसन्ध्याविहीनस्य जपविघ्नः सदा भवेत्।
तस्मात् सुन्दरि! तत्वज्ञः सन्ध्यात्रयमुपाचरेत्॥९४॥
प्रातर्न तर्पणं कार्य्यं न च सायं विशेषतः।
मध्याह्ने तर्पणं कृत्वा यथोक्तफलवान् भवेत्॥९५॥

सायं-सन्ध्या के अभाव में जप में विघ्न हो जाते हैं। इसीलिए तत्वज्ञ साधक प्रातः-मध्याह्न तथा सायं सन्ध्या करें। प्रातः तथा सायं सन्ध्याकाल में तर्पण द्वारा यथोक्त फल प्राप्त होता है॥ ९४-९५॥

अर्घ्यहीना तु या सन्ध्या शोकदुःखप्रदा मता।
अर्घ्यं त्रिसन्ध्यं दातव्यमन्यथा[1] निष्फलो जपः।
समन्त्रापि च गायत्री सत्यं सत्यं वरानने!॥९६॥

अर्घ्यरहित जो सन्ध्या होती है, उससे साधक शोक तथा दुःख का भागी हो जाता है। इसी कारण तीनों संध्या में अर्घ्य देना चाहिए। अन्यथा कार्य निष्फल होगा। हे वरानने! सत्य कहता हूँ। समन्त्रा गायत्री भी अर्घ्यदान रहित होने से निष्फल हो जाती है ॥ ९६ ॥

ततः संहारमुद्रया तत्तेजः स्वहृदये नयेत् प्रणम्य च पूजाञ्चरेत्। इत्येवं सन्ध्या श्रीमदेकजटाविषया इति।

तदनन्तर संहारमुद्रा द्वारा उस तेज को अपने हृदय में लायें और प्रणामोपरान्त पूजातत्पर हो जायें। यही है एकजटा विषयक सन्ध्या।

॥ प्रथमपटल के अन्तर्गत तारागायत्री नामक तृतीय प्रकरण पूर्ण ॥

अथ तारादिसन्ध्याप्रकरणम्

मूलेन त्रिर्जलं देवतायै दद्यात्। वामहस्ते जलमादाय पूर्ववदाच्छादनम्, जपाघमर्षणञ्च ततस्तथा आचमनम्। ततो मूलमुच्चार्य्य "श्रीमदुग्रतारां देवीं तर्पयामि नमः" इति त्रिः। ततः ॐ ह्रीं हंसः इदमर्घ्यं श्रीसूर्य्याय नमः। इति गायत्र्या सूर्य्यमण्लस्थायै श्रीमदुग्रतारायै इदमर्घ्यं नमः इति त्रिः। ततो गायत्रीं ध्यायेत्।

मूलेन त्रिर्जलं दत्त्वा देवतायै वरानने!।
ततो देव्याः प्रकर्त्तव्यमघमर्षणमुत्तमम्॥९७॥
ततः स्तुत्वाऽऽचमं कुर्य्यात् ततः स्यादिष्टतर्पणम्।
अर्घ्यं दत्त्वा च गायत्र्या ध्यानं कुर्य्याच्च साधकः॥९८॥
देवतातर्पणे चैव तुष्टाः स्युर्गुरुपङ्क्तयः।
शरीरेऽस्यास्ततो देव्याः सन्ति शाश्वतराजसाः॥९९॥

अब उग्रतारा की सन्ध्याविधि कहते हैं। मूलमन्त्र को पढ़कर तीन बार (प्रत्येक बार मन्त्रोच्चारण से) देवता हेतु जल प्रदान करके बायें हाथ में पूर्ववत् जल को दाहिने हाथ से आच्छादित करके पूर्ववत् जप, अघमर्षण तथा आचमन का यथाक्रमेण निष्पादन करके तदनन्तर मूलोच्चारण के साथ तीन बार 'श्रीमद् उग्रतारा देवी को तर्पण तथा नमस्कार करता हूँ।' यह मूलोक्त मन्त्र से कहें।

१. देयञ्च इति पाठान्तरम्।

जैसे मूलमन्त्र + श्रीमदुग्रतारां देवीं तर्पयामि नमः। तदनन्तर 'ऊं ह्रीं हं सः इदमर्घ्यं श्री सूर्याय नमः' से सूर्यदेव को तीन बार अर्घ्यदान करें। इसके पश्चात् तारादेवी को अर्घ्यदान करें। गायत्री पढ़कर 'श्री सूर्यमण्डलस्थायै श्रीमदुग्रतारायै इदमर्घ्यं नमः' से तारादेवी को ३ बार अर्घ्य प्रदान करके गायत्री का ध्यान करें।

हे वरानने! इन देवता को मूलमन्त्र से तीन बार जल प्रदान करके तदनन्तर विहित विधानानुसार देवी का अघमर्षण करना होगा। (अघमर्षण अर्थात् पूजादिदेवकार्य के प्रारंभ में अनुष्ठेय शापनाशन वाला वेदमन्त्र)।

तदनन्तर साधक स्तुति, आचमन, इष्टतपर्ण तथा अर्घ्यदान करके गायत्री ध्यान करें।

देवता का तर्पण करने से गुरुजन सन्तुष्ट होते हैं। इन देवी के देह में निरन्तर रजोगुण स्थित रहता है॥ ९७-९९॥

सर्वसाधारणञ्चात्र ध्यानं सर्वजयावहम्।
सर्वदेवमयी यस्मात् तारिणी त्रिगुणात्मिका॥१००॥

ये त्रिगुणात्मिका तारिणी, सर्वदेवमयी हैं। इनके ध्यान से जय तथा समृद्धि का विधान होता है। इसी कारण इस पर सर्वसाधारण का अधिकार है॥ १००॥

अथ त्रिकालध्यानम् तत्रादौ प्रातः-

उद्यद्भानुसहस्राभां पुस्तकाक्षकराम्बुजाम्।[1]
कृष्णाजिनाम्बरां ब्राह्मीं ध्यायेत्तारकिताम्बरे॥१०१॥
श्यामवर्णां चतुर्बाहुं शङ्खचक्रलसत्कराम्।
गदापद्मधरां देवीं सूर्य्यासनकृताश्रयाम्॥१०२॥
सायाह्ने वरदां देवीं गायत्रीं संस्मरेत्ततः।
शुक्लां शुक्लाम्बरधरां वृषासनकृताश्रयाम्॥१०३॥
त्रिनेत्रां वरदां पाशकपालशूलधारिणीम्[2]।
सूर्य्यमण्डलमध्यस्थां ध्यायन् देवीं समभ्यसेत्॥१०४॥

अब त्रिकाल ध्यान कहते हैं-

पहले प्रातःध्यान-प्रातः तारायुक्त आकाश में उदीयमान सहस्र सूर्यवत्, पुस्तकहस्ता, कृष्णमृगचर्म पहने, ब्रह्मरूपा गायत्री का ध्यान करे।

मध्याह्न में श्यामवर्णा, चतुर्भुजा, शंखचक्र शोभित करा, गदापद्मधारिणी, सूर्यासन कृताश्रया (जो गरुड़ पर आसीन हैं) उन गायत्री का ध्यान करें।

---

१. पुस्तकञ्चाक्षराम्बुजाम्। २. नृकरोटिकाम् इति पाठान्तरम्।

सायाह्न में उन वरदा गायत्री का ध्यान शुक्लवर्णा, शुक्लाम्बर परिधाना, वृषासनासीना, त्रिनयना, पाश-शूल तथा मनुष्य शिरःअस्थिकाला धारिणी, सुशोभिता तथा सूर्यमण्डल में समुपविष्ट देवी का ध्यान करके साधना करें॥ १०१-१०४॥

लज्जाबीजं समुद्धृत्य उग्रतारापदं ततः।
सम्बोधनान्तं देवेशि! विद्महे तदनन्तरम्॥१०५॥
श्मशानवासिनि पदं धीमहीति ततः परम्।
तन्नस्तारे समुद्धृत्य प्रचोदयात् पदं ततः॥
सम्बोधनान्तं देवेशि! ततः स्यात्तु प्रचोदयात्॥१०६॥

पहले लज्जाबीज (ह्रीं) का उद्धार करके सम्बोधनान्त में 'उग्रतारा' पद का प्रयोग करके तदनन्तर 'देवेशि विद्महे' 'श्मशानवासिनी धीमहि तन्नस्तारे प्रचोदयात्' इत्यादि पदपरम्परा विन्यास करना होगा॥ १०५-१०६॥

"ह्रीं उग्रतारे विद्महे श्मशानवासिनि धीमहि। तन्नस्तारे प्रचोदयात्" इति।

ततः सामान्यगायत्रीं दशधा जप्त्वा विशेषगायत्रीम् अष्टोत्तरशतं जपेत्। ततः संहारमुद्रया तत्तेजः स्वहृदये नयेत्। इति उग्रतारासन्ध्या।

अथ नीलसरस्वतीसन्ध्या

मूलेन जलं संशोध्य सूर्य्याभिमुखं पञ्चधा जप्त्वा जलञ्च पञ्चधा दत्त्वा ॐ ह्रीं स्वाहा इत्याचम्य कृताञ्जलिः।

ॐ श्मशानालयमध्यस्थां चतुर्वर्गप्रदायिनीम्।
महामेधप्रभां देवीं नीलपद्मे विराजिताम्॥
सर्वाभरणशोभाढ्यां लोचनं हरनेत्रतः॥१०७॥

इससे मन्त्रोद्धार होगा ह्रीं उग्रतारे विद्महे, श्मशानवासिनी धीमहि, तन्नस्तारे प्रचोदयात्।

तदनन्तर सामान्य गायत्री का १० बार जप करके विशेष गायत्री (इस गायत्री का) जप १०८ बार करके जपान्त में संहारमुद्रा द्वारा इस जप को हृदय में धारण करें। (अर्थात् इस तेज को हृदय में धारण करें)। यही उग्रतारा की सन्ध्या है।

अब नीलसरस्वती की सन्ध्या कहते हैं- मूलमन्त्र से पूर्ववत् जलशुद्धि के पश्चात् सूर्य की ओर मुख करके ५ बार जप तथा ५ बार तर्पण करें। 'ॐ ह्रीं स्वाहा' से आचमन करके कृतांजलि युक्त होकर श्लोक १०८ पढ़कर ('ऊ श्मशानालय' से

लेकर 'हरनेत्रतः' पर्यन्त पढ़कर) जल में षट्कोण बनाये तथा तीर्थावाहन करके तत्वाचमन करें॥ १०७॥

इति पठित्वा जले षट्कोणं विलिख्य तीर्थमावाह्य तत्त्वेनाचमनं कृत्वा मूलेन त्रिर्जलं भूमौ दद्यात्। इत्यघमर्षणम्। ततश्चैकजटावत् तर्पणं विधाय अर्घ्यं दद्यात्।

जलमूले च संशोध्य पञ्चधा मूलमन्त्रकम्।
पञ्च वारान् जलं दत्त्वा पूजावच्चाचमं चरेत्॥१०८॥

तदनन्तर मूलमन्त्र से तीन बार भूमि पर जल देकर एकजटादेवी का विधानोक्त प्रकार से तर्पण करें। इसके लिए कहा है कि अर्घ्य, जल तथा मूलमन्त्र संशोधन करके ५ बार मूलमन्त्र जप द्वारा ५ बार जल प्रदान करके पूजा की ही तरह आचमन करना चाहिए॥ १०८॥

सूर्य्यस्य मण्डले देवीं ध्यात्वा वाचमनं चरेत्।
ततश्चैकजटावच्च सन्ध्यां कुर्य्यात्तु साधकः॥१०९॥

अर्घ्ये तु गायत्र्या सूर्यमण्डलस्थायै तारादेव्यै श्रीनीलसरस्वत्यै इदमर्घ्यं स्वाहा। इति त्रिः। ततो ध्यानम्।

सूर्य्यमण्डलसंलग्नां मुक्ताहारविशोभिताम्।
द्विनेत्रां द्विभुजां देवीं चतुर्वक्त्रां सरोजजाम्॥११०॥
मध्याह्ने विष्णुरूपाञ्च चतुर्हस्ताञ्च भैरवीम्।
मुक्तामाणिक्यसंयुक्तां नानाहारादिशोभिताम्।
मन्त्रसिद्धिप्रदां देवीं गायत्रीं साधकाग्रणीः॥१११॥
सायाह्ने सूर्य्यसंस्थाञ्च पञ्चवक्त्रां त्रिलोचनाम्।
माहेश्वरीं जगद्धात्रीं जगज्जङ्गमपालिकाम्॥११२॥

सूर्यमण्डल तथा देवी इन दोनों का ध्यान करके आचमन करके प्रवृत्त होना होगा। तदनन्तर साधक एकजटा विधान की ही तरह सन्ध्या सम्पन्न करे।

अर्घ्यदान काल में गायत्री जप के साथ सूर्यमण्डल में स्थित 'तारादेवी तथा नील सरस्वती के अर्घ्य देता हूँ,' यह कहें। इसे कह कर तीन बार जल प्रदान करें। तदनन्तर ध्यान करें।

प्रातःकाल में देवी का ध्यान सूर्यमण्डलस्था, मुक्ताहारभूषिता, द्विनेत्रा, चतुर्वदना, पद्मसमुद्भवा रूप से करे।

मध्याह्न में-विष्णुरूपा चतुर्हस्ता, मणिमाणिक्य-युता, विविध हार आदि से शोभित मन्त्रसिद्धि भैरवी रूप से ध्यान करें।

सायाह्न में-सूर्यसंस्थिता, पंचवक्त्रा, त्रिलोचना, माहेश्वरी, जगद्धात्री तथा जगज्जङ्गमपालिकारूप ध्यान करें॥ १०९-११२॥

तारं पूर्वं समुद्धृत्य नीलसरस्वतीपदम्।
धीमहि प्रथमं योज्यं सारदायै च विद्महे।
तन्नः शिवे पदञ्चोक्त्वा ततो दद्यात् प्रचोदयात्॥११३॥

गायत्रीमन्त्र यथा-

"ॐ नीलसरस्वति धीमहि सारदायै विद्महे, तन्नः शिवे! प्रचोदयात्।" इति गायत्रीं यथाशक्ति जपेत्।

ततः सर्वमेकजटावत्। तारार्णवे महाचीने च विशेषः-

स्त्रीणाञ्चापि च शूद्राणां ब्राह्मणानां पृथक्-पृथक्।
ब्राह्मणेन प्रकर्त्तव्यं यद्यदुक्तं हि पुस्तके॥११४॥
अन्यथा निष्फलं विद्यात् सर्वा पूजादिका क्रिया।
प्रातःकृत्यं तथा स्नानं तथा सान्ध्यत्रयं शिवे! ॥११५॥

तदनन्तर नीलसरस्वती गायत्री जप करना होगा।

नील सरस्वती गायत्री यह है-पहले तार (ॐ) का उद्धार करके तदनन्तर 'नीलसरस्वती' पद के साथ 'धीमहि' शब्द योजित करें। तदनन्तर 'सर्वदायै विद्महे' कहकर 'तन्नः शिवे' का उच्चारण करके 'प्रचोदयात्' पद लगायें। मन्त्रोद्धार होगा- 'ॐ नीलसरस्वति धीमहि सारदायै विद्महे (कहीं कहीं 'सर्वदायै विद्महे' पाठभेद है) तन्नः शिवे प्रचोदयात्'।

तारार्णव तथा महाचीन में विशेष निर्देश है। यथा-स्त्री, शूद्र, ब्राह्मण के लिए पृथक्-पृथक् मार्ग हैं। पुस्तक में जो कुछ कहा गया है ब्राह्मण शास्त्रविहित विधान से उन सबका अनुष्ठान सम्पन्न करें॥ ११३-११५॥

स्त्रीशूद्रयोस्तारमन्त्रे लज्जाबीजं प्रकीर्त्तितम्।
वह्निजायामनुर्यत्र नमस्तत्र प्रकीर्त्तितम्।
सर्वत्र पूजाहोमादावविशेषो विधिर्मतः॥११६॥

स्त्री तथा शूद्रार्थ मन्त्र के प्रारम्भ में 'ॐ' के स्थान पर 'ह्रीं' बीज लगाये तथा जहाँ 'स्वाहा' लगेगा वहाँ पर 'नमः' लगाये। पूजा तथा होमादि सभी स्थल पर एक ही विधान होगा॥ ११६॥

॥ प्रथम पटल का तारादिसन्ध्या प्रकरण नामक चतुर्थ प्रकरण समाप्त॥

DATE

अथ बीजकोश (ष) प्रकरणम्

ततो देव्या मनुं वक्ष्ये तारायाश्च सदाशिवे !।
यस्य विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥११७॥
ब्रह्मा पृथ्वी वामनेत्रं चन्द्रबिन्दुसमन्वितम्।
कामबीजं समाख्यातं त्रैलोक्यजयदायकम्॥११८॥

हे सदाशिव! अब देवीतारा का मन्त्र कहता हूँ। जिसे जानने मात्र से लोग जीवन्मुक्त हो जाते हैं।

अब महानील तन्त्र तथा तारा निगमादि में लिखित बीजकोष कहा जाता है। जैसे ब्रह्मा (क), पृथिवी (ल), वामनेत्र (ई), चन्द्रबिन्दु शब्द में अर्द्धचन्द्र (ँ), इनका योग = क + ल + ी + ँ = क्लीं। यह काम बीज का उद्धार है। यह साधन करने पर त्रैलोक्य विजय हो जाती है ॥ ११७-११८ ॥

क्षान्तरेफसमायुक्तं वामनेत्रं सचन्द्रकम्।
लज्जाबीजमिति ख्यातं सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥११९॥

इस प्रकार क्षान्त (ह) रेफ (र) वामनेत्र (ई) तथा सचन्द्रक (ँ) यह सर्वसिद्धिप्रद लज्जाबीज (ह्रीं) को समुद्भावित करता है। अर्थात् इस प्रकार लज्जाबीज 'ह्रीं' का मन्त्रोद्धार हो गया॥ ११९॥

षष्ठस्वरसमोपेतं हकारं चन्द्रखण्डकम्।
कूर्चबीजमिति ख्यातं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥१२०॥

षष्ठ स्वर ऊ से युक्त हकार (हू) जब चन्द्रबिन्दु (ँ) से युक्त होता है तब कूर्चबीज 'हूँ' का मन्त्रोद्धार होता है- यह त्रिभुवन विख्यात है॥ १२०॥

पवर्गस्य द्वितीयञ्च टवर्गस्याद्यमेव च।
सर्वरक्षाकरं मन्त्रमस्त्रबीजं प्रकीर्त्तितम्॥१२१॥

पवर्ग से द्वितीय (फ) तथ ट वर्ग का आद्य (ट) दोनों के योग से अस्त्रबीज 'फट्' का मन्त्रोद्धार होता है॥ १२१॥

चन्द्रखण्डसमोपेतं द्वादशस्वरमीरितम्।
वाग्भवं तच्च विज्ञेयं वाचःसिद्धिप्रदायकम्॥१२२॥

द्वादश स्वर (ऐ) जब चन्द्रबिन्दु युक्त (ँ) होगा तब वाग्भव बीज 'ऐं' का उद्धार सम्पन्न होगा ॥ १२२॥

त्रयोदशस्वरं देवि! चन्द्रखण्डविभूषितम्।
तारं प्रणवमित्युक्तं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्॥१२३॥

हे देवि! त्रयोदश स्वर (ओ) जब चन्द्रखण्ड से विभूषित होता है (ँ), तब 'ओं' पद का उद्धार होता है। यह 'ओं' साक्षात् ब्रह्मा-विष्णु-शिवरूप है॥ १२३॥

पञ्चमस्वरसंयुक्तं हकारं वर्मबीजकम्।
जलाग्निविन्दुसंयुक्तं चतुर्दशस्वरान्वितम्॥१२४॥
अङ्कुशं बीजमाख्यातं त्रैलोक्यस्य शुभावहम्।
नादिभान्तं विसर्गान्तं हृद्बीजं परिकीर्त्तितम्॥१२५॥

हकार जब पंचम स्वर (उ) से संयुक्त होकर चन्द्रखण्ड युक्त होता है तब वर्मबीज (हुँ) का उद्धार होता है। जल (क) अग्नि (र) बिन्दु (ं) जब चतुर्दश स्वर (औ) से संयुक्त होता है तब 'क्रौं' बीज का मन्त्रोद्धार होता है जो अंकुश बीज है। यह बीज साधित होने पर अत्यन्त शुभ होता है। आदि में 'न' उसके पश्चात् 'म' अन्त में विसर्ग (:) लगने से 'नमः' रूप हृद्बीज का उद्धार होगा॥ १२४-१२५॥

हान्तं यस्य चतुर्थञ्च द्वितीयस्वरसंयुतम्।
द्वितीयञ्च हकारञ्च वह्निजायासमन्वितम्॥१२६॥

हान्त (स) तथा यकार से चतुर्थ से (व्) युक्त होकर आकार से (आ) मिलित होता है, तब 'स्वा' पद रचित होगा। उसमें हान्त (हा) का योग करने से 'स्वाहा' का मन्त्रोद्धार होगा॥ १२६॥

ब्रह्माग्निर्वामनेत्रान्तं द्विजराजसमन्वितम्।
वधूबीजमिति ख्यातं वधूरिव यशस्विनी॥१२७॥

ब्रह्म (स) अग्नि (र) वामनेत्र (ी) द्विजराज (ँ) के योग से 'स्त्रीं' वधूबीज[1] का उद्धार होगा॥ १२७॥

बालस्त्वं वन्दनीयस्त्वं दासस्त्वं गुरुरेव च।
माता न गोपयेद्वाक्यं बालकेभ्यः कदाचन॥१२८॥
तस्मात्तत् पृच्छतां नाथ! यद्यहं देवदुर्लभम्।
तारामन्त्रं महादेव! वसुसिद्धिप्रदायकम्॥१२९॥

---

१. यहाँ जो वधूबीज का उद्धार है उससे तो स्रीं बनता है। जो त्रुटिपूर्ण है। जबकि वधु बीज होगा 'स्त्रीं'।

माता बालकों से कुछ भी गुप्त नहीं रखतीं। इसलिए हे महादेव! आपने अष्टसिद्धिदायक देवदुर्लभ तारामन्त्र जानना चाहा है॥ १२८-१२९॥

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च मातङ्गी कमलात्मिका॥१३०॥
धूमावती च बगला महाविद्याः प्रकीर्त्तिताः।
एतासां श्रवणादेव सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्॥१३१॥
विष्णुविद्या-देवविद्या-शिवविद्याविभेदतः।
शक्तिविद्याप्रभेदेन विद्या बह्वयः प्रकीर्त्तिताः॥१३२॥

काली-तारा-षोडशी-भुवनेशी-भैरवी-छिन्नमस्ता-मातङ्गी-कमला-धूमावती-बगला को महाविद्या कहते हैं। इनके नाम का श्रवण करने मात्र से साधक सर्वसिद्धि का ईश्वर हो जाता है। विष्णुविद्या, देवविद्या, शिवविद्या तथा शक्तिविद्या भेद से विद्या अनेक प्रकार की कही गयी हैं॥ १३०-१३२॥

सत्यादौ त्रियुगान्तञ्च विद्या जागर्त्ति नित्यशः।
कलौ जागर्त्ति काली च कलौ जागर्त्ति नित्यशः॥१३३॥

सत्य-त्रेता-द्वापर में यह विद्या सदा जागरित थी। लेकिन कलिकाल में केवल काली तथा पन्नगी (कुण्डलिनी) ही जाग्रत रहती है॥ १३३॥

कलौ काली कलौ कृष्णः कलौ गोपालकालिका।
काली तारा महाविद्या महासिद्धिप्रदायिनी॥१३४॥
महाविद्यासु सर्वासु कलौ सिद्धिरनुत्तमा।
सर्वविद्यामयी देवी काली सिद्धिरनुत्तमा॥१३५॥

कलि में काली, कृष्ण, गोपाल कालिका, काली, तारा ये दो महाविद्यायें ही बहुसिद्धि देती हैं। (यहाँ काली, कृष्ण गोपाल कालिका सबकी गणना एक में ही होगी क्योंकि कृष्ण भी काली ही हैं। अतः काली एवं तारा दो महाविद्या से तात्पर्य है।)

कलियुग में सभी महाविद्या की उत्कृष्ट विधान से, पूजा से सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। (अर्थात् सभी महाविद्या काली में कलिकाल में समाहित रहती हैं)। सर्वविद्यामयी देवी कालिका की सर्वोत्तम सिद्धि प्राप्त होती है॥ १३४-१३५॥

कालिका तारका विद्या सर्वाम्नायैर्नमस्कृता।
तयोर्यजनमात्रेण सिद्धः साक्षात् सदाशिवः॥१३६॥
यथा काली तथा तारा तथा नीलसरस्वती।
सर्वाभीष्टफलं दद्यात् तथा त्रिपुरसुन्दरी॥१३७॥

अभेदमतमास्थाय यः कश्चित् साधयेन्नरः।
त्रिलोके स तु सम्पूज्यः स्यात्तारासुत एव सः॥१३८॥

काली तथा तारारूप दोनों महाविद्या सभी आम्नाय द्वारा नमस्कृत हैं। उनके पूजन से ही साक्षात् सदाशिववत् सिद्धि प्राप्त होती हो जाती है।

काली जैसी हैं वैसी ही तारा, नील-सरस्वती तथा त्रिपुरसुन्दरी भी हैं जो सभी अभिष्ट प्रदातृ हैं।

इसीलिए जो व्यक्ति अभेदभावना से इनकी साधना करता है वह व्यक्ति त्रिभुवन में तारा के वरपुत्र के समान होकर परमपूज्य हो जाता है॥ १३६-१३८॥

भेदं कृत्वा तु यो मन्त्री साधयेदत्र साधनम्।
न तस्य निष्कृतिर्देवि! निरये पच्यते हि सः॥१३९॥
एतासां साधनेनैव यशः सिद्धिश्च नित्यशः।
केवलां भक्तिमास्थाय चतुर्वर्गं लभेत् करे॥१४०॥
त्रिपुरा च महाविद्या बहुसाधनसिद्धिदा।
यस्याः प्रसादान्मन्त्रेण भोगो मोक्षाय जायते॥१४१॥
कालिका तारका विद्या कलौ सिद्धिसमृद्धिदा।
दुःखं विना प्रसीदेत कलौ जागरणात्मिका॥१४२॥

हे देवि! जो भेदबुद्धि से इनकी साधना में प्रवृत्त होता है, उसका तो कैसे भी छुटकारा नहीं है। वह नरकगामी होगा।

प्रायः इनकी साधना नहीं करनी पड़ती। केवल भक्ति से आश्रय लेने मात्र से चतुर्वर्ग (धर्म-अथ-काम-मोक्ष) करतलगत हो जाता है।

महाविद्या त्रिपुरा अनेक साधना से सिद्धि देती हैं। उनकी कृपामात्र से भोग-मोक्ष मिल जाता है।

काली तथा तारा कलिकाल में सिद्धि-समृद्धि-व्यवस्था सम्पादित करता है। ये कलिकाल में सदा जागरित रहती हैं। बिना कष्ट के अनायास प्रसन्न हो जाती हैं॥ १३९-१४२॥

न वा प्रयोगबाहुल्यं न्यासजालादिके तथा।
न तत्र पश्वाचारः स्यात्तस्मात् तत्साधनं शुभम्॥१४३॥
कालिकासाधनं देवि ! मत्कृते कालिकार्चने।
राजते तद्धि तत्रैव प्रबुध्य साधनञ्चरेत्॥१४४॥

इनकी साधना प्रयोग बहुल अथवा न्यासबहुल नहीं करनी पड़ती। किसी प्रकार के पश्वाचार की भी आवश्यकता नहीं है। प्रायः अपने-आप ही साधना हो जाती है।

हे देवि ! मेरे द्वारा रचित कालिकार्चनतन्त्र में कालिका साधनार्थ सविशेष वर्णन है। उस साधन प्रक्रिया के विशेष विधान की परिकल्पना करके साधन प्रवृत्त हो जाये॥ १४३-१४४॥

अस्या मूर्तिर्द्वितीया या सृष्टिमूले व्यवस्थिता।
एतस्याः साधनञ्चैव सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥१४५॥
धनं धान्यं सुतं जायां भोगं मोक्षं तथैव च।
अचिरालभते वाणीं यस्याः स्मरणमात्रतः॥१४६॥
छन्दःशास्त्राणि नाधीत्य विनालापं कवेरपि।
गद्यपद्यमयी वाणी वक्त्रात् तस्य प्रजायते॥१४७॥

इन कालिका की जो द्वितीय मूर्त्ति सृष्टि मूल में विराजित है, उनका साधन करने से सर्वविध लाभ होता है।

अधिक क्या कहें! इस साधन प्रभाव से धन, धान्य, पुत्र, कलत्र, मुक्ति, भुक्ति, शीघ्रता से मिलती है। उनका स्मरण करने से किसी प्रकार के छन्दशास्त्राध्ययन तथा कवि के साथ ज्ञानालाप किये बिना ही साधक में गद्यपद्यमयी वाणी-समूह का आविर्भाव हो जाता है॥ १४५-१४७॥

अणिमा लघिमा व्याप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा।
अदर्शनं स्थौल्यरूपं वह्निस्तम्भं जलस्य च॥१४८॥
चन्द्रसूर्य्याग्निभूतानां स्तम्भको विभुरेव सः।
मन्त्रसिद्धिस्तथा-वेद-पुराणागमसिद्धिभाक्॥१४९॥

अणिमा, लघिमा, व्याप्ति, प्राकाम्य महिमा, अदर्शन, स्थौल्यरूप, वह्निस्तम्भ, जलस्तम्भ, चन्द्र-सूर्य स्तम्भन इत्यादि में दक्षता तथा प्रभुत्वाधिपत्य सुलभ हो जाता है। उसे वेद-तन्त्र-मन्त्र सिद्धि, पुराणसिद्धि तथा आगमसिद्धि मिल जाती है॥ १४८-१४९॥

उपचारविशेषेण राजपत्नीं वशं नयेत्।
चतुःषष्टिप्रकारेण सिद्धिराकाशगामिनी॥१५०॥
पञ्चशून्ये स्थिता तारा सर्वान्ते कालिका स्थिता।
सिद्धयः सन्ति यत्रापि तदानीय प्रदीयते॥१५१॥

यदि साधयितुं देवि! शक्यते तारकाकुले।
तदा सिद्धिमवाप्नोति सर्वदा कुलमण्डले॥
कुलाचारविहीनस्य न सिद्धिर्न च सद्गतिः॥१५२॥

किम्बहुना, उपचार विशेष से इनकी आराधना करने पर साधक राजपत्नी तक को वशीभूत कर सकता है तथा ६४ प्रकार की आकाशगामिता सिद्धि भी मिल जाती है।

देवीतारा पञ्चशून्य में अवस्थित करती हैं। अर्थात् जहाँ पंचतत्व विलीन हो जाते हैं, तब यह महाविद्या सबके अन्त में, उस महाप्रलय काल में स्थित रहती है।

हे देवि! यदि साधक ताराकुल में साधन समर्थन हो जाये, तब वह सर्वदा कुलमण्डल में सिद्धि प्राप्त करता है।

जो कुलाचार रहित है, उसे न सिद्धि है, न सद्गति है॥ १५०-१५२॥

ब्रह्मघ्नश्च कृतघ्नश्च गुरुयोषागतश्च यः।
कन्यागतः स्नुषागश्च ब्राह्मणीगो गवीगतः॥१५३॥
हिंसावान् सर्वजन्तूनां ब्राह्मणानां विशेषतः।
पृथिव्यां रेतसां पातः शिवपूजाबहिर्मुखः॥
शृणु वत्स! महादेव! महापातकिनो यथा॥१५४॥
एतेभ्यो मुच्यते देव! तारामन्त्रः श्रुतो यदि।
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः सर्वपापयुतोऽपि सः॥१५५॥

ब्रह्महत्या, कृतघ्नता, गुरुपत्नी हरण, कन्यागमिता, पुत्रवधूगामिता, ब्राह्मणीगमन, गौ से गमन, सभी जन्तु तथा ब्राह्मण हत्या, शिवपूजा बहिर्मुखता, पृथिवी पर वीर्यपात, ये सब महापातक जिसमें संचित हैं, हे वत्स महादेव! श्रवण करो! तारामन्त्र सुनने मात्र से ये सब पाप दूर हो जाते हैं।

वह व्यक्ति सर्वपापयुक्त होकर भी सर्वपाप रहित हो जाता है॥ १५३-१५५॥

कुलदीक्षाविहीनस्य न सिद्धर्न च सद्गतिः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ताराया देशिको नरः॥१५६॥
कुलाचारविहीनश्चेत् सर्वपापैरवाप्यते।
कुलाचाररतो यस्तु तर्पयेत् कुलदेवताम्॥१५७॥

जो कुलदीक्षा रहित है। उसे सिद्धि अथवा सद्गति कुछ भी नहीं मिलती है। इसी करण सर्व प्रकार से तारामन्त्र दीक्षा लेनी चाहिए।

कुलाचार विहीन होने पर किसी भी पाप का लेश नहीं रह जाता जो व्यक्ति कुलाचाररत होकर नित्य कुलदेवता देवी श्रीतारा का तर्पण करता है, सिद्धि उसके हाथों में रहती है॥ १५६-१५७॥

नित्यं श्रीतारकां देवीं यस्य सिद्धिः करे स्थिता।
आचारज्ञानवान् यश्च क्रियते न कुलक्रिया॥१५८॥
पच्यते नरके घोरे कल्पकोटिशतैरपि।
परदाररतो यश्च चक्रमध्ये भवेन्नरः॥१५९॥
शुनीविष्ठाकृमिर्भूत्वा तिष्ठेत् कल्पायुतं भुवि।
साधनञ्च समासाद्य परयोषारतो भवेत्॥१६०॥
मातुर्योनिं परित्यज्य विहरेत् सर्वयोनिषु।
निर्विकारो निर्विकल्पो भवेत् साधकसत्तमः॥१६१॥

जो व्यक्ति चक्र में परदारागमन करता है, वह कुतिया के मल में कीड़ा होता है तथा उसी में एक कल्प स्थित रह जाता है। साधनमार्गानुगामी होकर ही परस्त्री से संसर्ग करे।

निर्विकार तथा निर्विकल्प साधक केवल मातृयोनि के अतिरिक्त बाकी सभी योनि में विहार कर सकता है।

यहाँ मातृपद से सात प्रकार की मातृयोनियाँ त्याज्य हैं। तारानिगम आदि में इसका वर्णन है॥ १५८-१६१॥

शक्यते यस्तु वै दातुं स्वयोषां भक्तवत्सलाम्।
तदा योषां समानीय ह्यन्येषां साधयेद् ध्रुवम्॥१६२॥
स एव साधकश्रेष्ठो निर्विकल्पाय निश्चितम्।
साधकेभ्यः प्रदीयेत तदान्यां परिगृह्यते॥१६३॥
न दातुं शक्यते यस्तु स्वयोषां देववत्सलः।
नटीं स तु समानीय साधयेच्छक्तिसाधनम्॥१६४॥

जो भक्तिवत्सला स्वकीय पत्नी का दान कर सकता है वही परकीय स्त्री को लाकर साधन करने में समर्थ है।

वही साधक प्रवर है तथा वही निर्विकल्प कहला सकता है जो साधकों को अपनी पत्नी दान करने में समर्थ है, वही नटी को लाकर शक्ति साधन करे॥ १६२-१६४॥

स्वयोषां दीयते यस्तु चक्रमध्ये तु साधकः।
गुरुभ्यः साधकेभ्यश्च तस्य शीर्षे वसाम्यहम्॥
सर्वसिद्धिस्तस्य देव! चक्षुषोस्तस्य गोचरा॥१६५॥

जो साधक चक्र में गुरु तथा साधकवर्ण को अपनी पत्नी दान करता है, मैं उसके मस्तक में वास करता हूँ।

हे देव! समस्त सिद्धियाँ उसको चक्षुगोचर रहती हैं। तारानिगम तथा चीनक्रम में यही लिखा है॥ १६५॥

॥ प्रथम पटल का बीजकोष प्रकरण पूर्ण॥

इत्यादि तारानिगमादिचीनान्तम्

अथ विद्यानिरूपणप्रकरणम्

तारकत्वात् सदा तारा तस्य भेदविभेदतः।
आद्या कल्पे मुक्तकेशी रुद्रस्त्वेकजटः स्वयम्॥ १६६॥
अस्माच्चैकजटा प्रोक्ता मन्त्रश्चास्या निरूप्यते।
वसिष्ठाराधिता विद्या न तु शीघ्रफला यतः॥ १६७॥
अतस्तेनापि मुनिना शापो दत्तः सुदारुणः।
ततः प्रभृति विद्येयं फलदात्री न कस्यचित्॥
तत्तदुद्धारितं तेन शिवेन गुरुणा स्वयम्॥१६८॥

(यहाँ विद्या का अर्थ है मन्त्र)। अब तारामन्त्र कहते हैं। तारकत्व अर्थात् जो सब का संसार से उद्धार करें। आद्यकल्प में मुक्तकेशी थीं। महादेव में उन्हें स्वयं जटामूर्त्ति प्रदान किया।

इसी कारण उनका नाम है एकजटा। अब उनके मन्त्र का निरूपण हो रहा है। वसिष्ठ ने इस विद्या की आराधना की थी। लेकिन वे फललाभ नहीं कर सके।

अतएव उन्होंने क्रुद्ध होकर देवी को अत्यन्त दारुण शाप दे दिया। इसी कारण यह विद्या किसी को भी फलदा नहीं हो सकी। यह देखकर चराचर स्थावर-जंगम-विश्वजगत् के गुरु स्वयं महादेव शंकर ने इस विद्या का उद्धार किया (शापमोचन किया)॥ १६६-१६८॥

लज्जाबीजं वधूबीजं कूर्चबीजमतः परम्।
अस्त्रान्तमनुना ख्यातं पञ्चरश्मिस्वरूपकम्॥ १६९॥

पहले लज्जाबीज (ह्रीं) तदनन्तर वधूबीज (स्त्रीं), तदनन्तर कूर्च बीज (हूँ), तदन्तर अस्त्र (फट्)। यह पंचांक्षरी विद्या 'ह्रीं स्त्रीं हूं फट्' एकजटा मन्त्र है॥ १६९॥

इति चैकजटाविद्या सर्वशास्त्रेषु गोपिता।
सर्वशास्त्रे गोचरा च कामिनी सिद्धिदायिनी॥१७०॥

इन सभी को शास्त्र में गुप्त रखा गया है। लेकिन यह सभी शास्त्रों में है। इसका साधन करने पर सभी कामना ये सफल होती हैं तथा सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं॥ १७०॥

महापातकलक्षेण क्षितौ यदि च मानवः।
एतस्य श्रवणाद्देवि! जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम्॥१७१॥

यदि मानव लाखों-लाख महापाप करता है, तब भी वह इस विद्या को सुनने मात्र से निश्चित रूप से सर्वपाप रहित तथा जीवनमुक्त हो जाता है॥ १७१॥

श्रीतारा नैव दातव्या भूमिस्वर्गरसातले।
यदि प्रदीयते देवि! निरये पच्यते ध्रुवम्॥१७२॥
ज्येष्ठपुत्राय शान्ताय स्वरूपज्ञानशालिने।
श्रीयुतां यदि राधेत शूद्रो मोहवशं गतः॥१७३॥
तारकाद्यां महाविद्यां पतनं तस्य निश्चितम्।
स्त्रीणाञ्चापि वरारोहे! निषिद्धं सर्वदैव हि॥१७४॥

भूलोक, स्वर्गलोक, पाताललोक में किसी को यह विद्या प्रदान न करें। यदि कोई देता है, तब उसे निश्चय नरक में जाना होगा।

यदि शूद्र भी मोहवशात् क्रमोर्द्धगामिनी शक्तिवर्द्धक क्रमोन्नति तथा पूर्णता विधायक उत्कर्षशील श्रीबीजयुक्त ताराद्या महाविद्या की आराधना करता है, तब उसका पतन निश्चित है। हे वरारोहे! स्त्रीगण हेतु इस विद्या की आराधना सर्वथा निषिद्ध है॥ १७२-१७४॥

आदौ श्री एकजटा उद्धरिता, अतः श्रीतारा नोक्ता, सर्वत्र दोषश्रवणात् स्वीयधर्मत्वाच्च।

श्रीबीजाद्या यदा विद्या तदा श्रीः सर्वतोमुखी।
वाग्भवाद्या यदा विद्या वागीशत्वप्रदायिनी॥
पञ्चरश्मिर्महाविद्या लभ्यते यदि भाग्यतः।
तस्य भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव शङ्करः॥१७५॥

पहले एकजटा का मन्त्रोद्धार करके उसके पश्चात् तारा का मन्त्र नहीं कहना चाहिए। इससे वह सर्वत्र निन्दित हो जाता है।

(मन्त्र के) आदि में (श्रीं) श्रीबीजयुता होने से यह सर्वतोमुखी श्रीरूप में प्रकटित तथा प्रकाशित होती हैं। आदि में (ऐं) वाग्भव बीजयुता होने पर यह वागीशत्व देती हैं। यह पंचाक्षरी महाविद्या सौभाग्य से यदि लाभ हो जाय तब भोग-मोक्ष करस्थ हो जाता है। यही है एकजटा देवी का शक्तिसिद्धि मन्त्र ॥ १७५ ॥

इत्येकजटादेव्याः शक्तिसिद्धिमन्त्रः-

लज्जाद्या चापरा चासौ भोगमोक्षप्रदायिका।
सार्द्धपञ्चक्षरं मन्त्रं महासिद्धिप्रदायकम् ॥ १७६ ॥

एतस्या गायत्री। "ॐ तारायै विद्महे मोक्षदायै च धीमहि। तन्नो नीले प्रचोदयात्।"

इति तारागायत्रीमन्त्रः।

कामाख्या चापरा विद्या कामतारा प्रकीर्तिता।
भोगमोक्षप्रदा देवी शार्वशास्त्रे प्रपूजिता ॥ १७७ ॥

"ॐ कामाख्यायै विद्महे कुलकौलिन्यै धीमहि। तन्नः श्यामे प्रचोदयात्।"

इति एकजटाभेदः

अथ उग्रतारा

कूर्चाद्या पञ्चरश्मिर्या विद्या ख्याता महीतले।
उग्रतारा समाख्याता स्वर्गे मर्त्ये रसातले ॥ १७८ ॥

आदि में लज्जाबीज (ह्रीं) का योग रहने पर यह विद्या मोक्ष-प्रदात्री हो जाती है। यह ५$\frac{1}{2}$ अक्षर का मन्त्र महासिद्धि को सर्वांगसुन्दर रूप से घटित कराता है।

तारा गायत्री है- "ॐ तारायै विद्महे मोक्षदायै धीमहि तन्नो नीले प्रचोदयात्।" यही है तारामन्त्र की गायत्री।

अपर विद्या है कामाख्या। इनको कामतारा भी कहते हैं। यह विद्या सर्वशास्त्रों में विशेष रूपेण पूजित तथा मुक्ति-भुक्ति प्रदात्री है। इनकी गायत्री है- "ॐ कामाख्यायै विद्महे कुलकौलिन्यै धीमहि, तन्नः श्यामे प्रचोदयात्"। इस प्रकार एकजटाभेद समाप्त होता है।

अब उग्रतारा के विषय में कहते हैं। जिसके आदि में कूर्चबीज 'हुं' है तथा जो पंचाक्षर युक्त है (हूं ह्रीं स्त्रीं हूं फट्।) तथा पंचाक्षरी विशिष्ट है। स्वर्ग, मर्त्य तथा पाताल में उग्रतारा का यह मन्त्र कहा गया है ॥ १७५-१७८ ॥

अस्यास्तु स्मरणात् सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते।
भोगमोक्षप्रदा देवी सर्वतन्त्रेषु पूजिता॥१७९॥

अस्या गायत्री तत्रैव। ''ॐ उग्रतारे धीमहि, सिद्धिसारे च विद्महे। तन्नो नीले प्रचोदयात्''। इत्युग्रतारागायत्री।

तत्रैव मन्त्रः

वधूलज्जा ततः कूर्चमस्त्रान्तोऽयं महामनुः।
शम्भुपत्नी समाख्याता सर्वतन्त्रेषु गोपिता॥१८०॥

इसका स्मरण करने मात्र से साधक सभी पापों से मुक्त हो जाता है। सर्वतन्त्रों में इसकी पूजा होती है। इसकी साधना द्वारा भोग तथा अपवर्ग मिलता है।

इसकी गायत्री है ''ऊं उग्रतारे धीमहि, सिद्धिसारे विद्महे, तन्नो नीले प्रचोदयात्।''

इसका मन्त्र है-पहले वधूबीज (स्त्रीं) तदनन्तर लज्जाबीज (ह्रीं), तदनन्तर कूर्चबीज 'हूं', तदनन्तर अस्त्रबीज (फट्) लगायें मन्त्रोद्धार है 'ऊं स्त्री.ह्री.हूं फट्'। यह विद्या है शम्भुपत्नी विद्या। यह सभी तन्त्रों में गोपिता है॥ १७९-१८०॥

अस्या गायत्री तत्रैव। ''ॐ शम्भु-पत्न्यैं विद्महे महोग्रायै च धीमहि तन्नोस्तारे प्रचोदयात्॥''

आदौ कूर्चं ततो लज्जा वधूबीजमतः परम्।
फडन्तश्च महामन्त्रः सर्वतन्त्रशुभावहः।
महाकालप्रिया देवी भोगमोक्षप्रदायिनी॥१८१॥

इस विद्या का नाम शम्भुपत्नी है। यह सभी तन्त्रों में गुप्त है। इसकी गायत्री है- ''ऊं शम्भु पत्न्यै विद्महे महोग्रायै धीमहि तन्नोस्तारे प्रचोदयात्।''

आदि में 'हुं', तदनन्तर 'ह्रीं' तदनन्तर 'स्त्री' अन्त में 'फट्'। यह महामन्त्र सभी तन्त्रों में शुभप्रद कहा गया है। यह विद्या महाकाल प्रिया तथा भोग-मोक्ष प्रदायिका है॥ १८१॥

हूँ ह्रीं स्त्रीं फट्। एतस्या गायत्री।
''ॐ तारकायै विद्महे महाकालप्रियायै धीमहि। तन्नः शक्ति प्रचोदयात्॥''

अथ नीलसरस्वती

ताराद्येकजटामन्त्रो नीलवाण्याः प्रकीर्त्तितः।
यस्यास्तु स्मरणात् सम्यग् वागीशत्वं लभेद् ध्रुवम्॥१८२॥

इनकी गायत्री है 'ऊं ताराकायै विद्महे महाकाल प्रियायै धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्' यह महाकाल प्रिया गायत्री मन्त्र है।

तदनन्तर नीलसरस्वती प्रकरण कहते हैं। तारा तथा एकजटा दोनों का मन्त्र ही नीलसरस्वती का मन्त्र है। इनके स्मरणमात्र से वागीशत्व का निश्चय लाभ होता है॥ १८२॥

अस्या गायत्री। "ऊं नीलसरस्वत्यै विद्महे श्रीतारायै विद्महे। तन्नो देवि! प्रचोदयात्" इति॥

वाग्भवाद्या चैकजटा महानीलसरस्वती।
अस्याश्च स्मरणात् सद्यः सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्॥१८३॥

इनकी गायत्री है-"ऊं नीलसरस्वत्यै धीमहि श्रीतारायै विद्महे तन्नो देवि प्रचोदयात्।" आदि में 'ऐं' बीज का योग करने पर एकजटा तथा महानीलरसरस्वती का मन्त्र होता है, जिसके स्मरणमात्र से (जपमात्र से) व्यक्ति सर्व-सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

यह गायत्री है। यह तृतीय सन्ध्या में लिखित है। उग्रतारा सन्ध्या में गायत्री सुनी गयी (?)॥ १८३॥

अस्या गायत्री। तृतीय सन्ध्यायां लिखिता। उग्रतारा सन्ध्यायां गायत्री श्रुता।

॥ प्रथम पटलान्तर्गत विद्या निरूपण प्रकरण समाप्त॥

अथ कुल्लूकाप्रकरणम्

कुल्लूका विद्या मन्त्रस्तु सर्वत्र प्रयोगे पद्मावती च-
लज्जावधूकूर्चबीजप्रयोगः सिद्धिदायकः।
कुल्लुकेयं समाख्याता सर्वतन्त्रेषु गोपिता॥१८४॥

अब कुल्लूका प्रकरण कहते हैं। इसका प्रयोग सर्वत्र पद्मावती नाम से अभिहित है। 'ह्री.स्त्रीं हूं' इन बीजत्रय के प्रयोग से सिद्धि मिलती है। इसका ही नाम है सर्वतन्द्रगोपिता कुल्लुका॥ १८४॥

प्रणवं पूर्वमुदधृत्य पद्मे पद्मे पदं ततः।
महापद्मे पदं प्रोच्य पद्मावतिपदं ततः।
माये स्वाहा महामन्त्रप्रयोगः सिद्धिदायकः॥१८५॥

"ॐ पद्म महापद्मे पद्मावति! ह्रीं ह्रीं स्वाहा" अत्र शास्त्रे 'माये' इति श्रवणाल्लज्जाद्वयं बोध्यम्। ये तु सम्बोधनान्तमायाशब्दं वदन्ति ते म्लेच्छाः।

तारानिगमे पद्मावतीप्रकरणे यथा-

तारं पद्मे च पद्मे च महापद्मे ततःपरम्।
पद्मावति ततो लज्जाद्वयं स्वाहा ततो मनुः॥१८६॥

पहले प्रणव (ॐ) का उद्धार करें। तदनन्तर 'पद्मे पद्मे' कहें। तदनन्तर 'महापद्मे' कहकर 'पद्मावती' पद योजित करें। तदनन्तर 'माये' एवं 'स्वाहा' पद जोड़ें। इसके प्रयोग से सिद्धि प्राप्त होती है।

यहाँ 'माये' शब्द का अर्थ है लज्जाबीज (ह्रीं) का दो बार प्रयोग। जो सम्बोधनान्त में माया शब्द कहते हैं वे म्लेच्छ हैं। (यहाँ माये शब्द द्विवचनात्मक है। यह सम्बोधन नहीं है)। मन्त्रोद्धार हैं 'ॐ पद्मे पद्मे महापद्मे पद्मावति ह्रीं ह्रीं स्वाहा'।

तारानिगम में पद्मावती प्रकरण में कहा है कि पहले प्रणव (ॐ) तदनन्तर पद्मे पद्मे महापद्मे कहकर 'पद्मावती' पद कहकर लज्जाद्वय (ह्रीं ह्रीं) तथा स्वाहा पद कहें॥ १८५-१८६॥

तारकत्वात् सदा तारा या काली सैव निश्चिता।
बहवोऽस्याश्च मन्त्राः स्युः सर्वतन्त्रागमादिषु॥१८७॥
शक्तिसिद्धा महाविद्याः सारात् सारतराः स्मृताः।
अष्टविद्यासमो नास्ति भूतले सिद्धिदो मनुः॥१८८॥

सबका उद्धार करती हैं अतः ये 'तारा' हैं। जो तारा हैं, वे ही काली हैं। समस्त तन्त्र तथा आगम आदि में इनके अनेक मन्त्र सन्निविष्ट हैं।

ये महाविद्या सभी शक्ति की सिद्धि देने वाली तथा सारात्सारा हैं। अष्टविद्या के समान पृथिवी पर सिद्धिप्रद कुछ भी कोई भी मन्त्र नहीं है॥ १८७-१८८॥

आद्या चैकजटा प्रोक्ता द्वितीया चोग्रतारका।
तृतीया नीलवाणी स्याद् भोगमोक्षप्रदा मता॥१८९॥

तत्र एकजटामन्त्रोद्धारदेकलक्षणं लिखितं संक्षेपतः-

उग्रापत्तारिणो यस्मादुग्रतारा प्रकीर्त्तिता।
दत्ता वाक् नीलया यस्मात्तस्मान्नीलसरस्वती॥१९०॥

इन मन्त्रों की तीन अधिष्ठातृ देवता हैं। प्रथम की अधिष्ठातृ एकजटा, दूसरे की उग्रतारा, तृतीय की नीलसरस्वती। ये सभी मुक्ति-भुक्ति प्रदात्री हैं।

इनमें एकजटा के मन्त्रोद्धारादि में उनके स्वरूप आदि के विषय में संक्षेप में कहा जा चुका है।

ये उग्र आपत्ति से त्राण करती हैं, तभी ये हैं उग्रतारा। नीला अर्थात् अवलीलाक्रमेण वाक्शक्ति प्रदान करती हैं। अतएव इनका नाम है नील सरस्वती। यहाँ लकार पाठ अर्थात् लील, यह पाठ (लीला सरस्वती) नहीं होगा क्योंकि इससे नील सरस्वती पद सिद्ध नहीं होता। लीलसरस्वती हो जाता है। भ्रान्ति से 'लीलसरस्वती' पाठ है॥ १८९-१९०॥

एतासामष्टमन्त्राणां ऋषिच्छन्दांसि साधक!।
शृणु चात्र प्रवक्ष्यामि रहस्यं मम सम्मतम्॥१९१॥
नीलाचारादिकं दृष्ट्वा पुरश्चरणमेव च।
प्रत्येकञ्च प्रवक्ष्यामि अष्टमन्त्रञ्च तारके॥१९२॥
अक्षोभ्योऽस्य ऋषिः प्रोक्तो वृहतीच्छन्द एव च।
बीजं लज्जामनुः प्रोक्तं शक्तिः कूर्चमितीरितम्॥१९३॥
कीलकं निजबीजञ्च वधूबीजं सुसिद्धकम्।
लक्षसंख्यं जपन्मन्त्रं फलमूलैर्वने वसन्॥१९४॥

इन आठ महाविद्याओं के आठ मन्त्रों के ऋषि-छन्द तथा रहस्य का अपने मतानुसार वर्णन करूँगा। श्रवण करें। इस सबके ऋषि हैं 'अक्षोभ्य', छन्द है बृहती, बीज है 'ह्रीं' शक्ति है 'हुं' तथा कीलक है अपना बीज (इनका-इनका मूल बीज), ये सभी वधूबीज (स्त्रीं) से ही सिद्धि प्रदान करते हैं। वन में निवास करके फलभूत भक्षण द्वारा इस मन्त्रों का एक लाख जप करें॥ १९१-१९४॥

नीलपद्मैश्च जुहुयान्मधुरेण त्रयेण च।
आद्यामन्त्रे तद्भेदे च सर्ववर्णेष्वयं विधिः॥१९५॥
उग्रतारामनौ वत्स! विधिरेष न संशयः।
लक्षद्वयञ्च तद्भेदे पुरश्चरणकर्मसु॥१९६॥

रात्रि में शक्ति (कुलस्त्री) के साथ कुलाचाररत होकर मुख में ताम्बूल भरकर इस विधान से जप करना चाहिए। मधुरत्रययुक्त नीलपद्म से होम करें। आद्या के मन्त्र तथा उसके भिन्न-भिन्न क्रम से सभी वर्ण में ऐसा ही करना होगा।

हे वत्स! उग्रतारा मन्त्र की भी निःसंदिग्ध रूपेण यही विधि है। उसके पुरश्चरण में बस इतना भेद है कि दो लाख मन्त्रजप करना होगा॥१९५-१९६॥

नीलवाणी नीलकल्पे मन्त्रभेदसमन्विते।
लक्षद्वयं जपेन्मन्त्रं तदा सिद्धिरनुत्तमा॥१९७॥

सर्वतारासु विद्यासु पुरश्चरणकर्मसु।
जुहुयान्नीलपद्मैश्च विल्वपत्रैरभावतः॥१९८॥

नीलसरस्वती के नीलकल्प में मंत्रभेद समन्वित मन्त्र का लक्षद्वय (दो लाख) जप करने से अनुत्तम सिद्धि प्राप्त होती है।

सभी तारामन्त्रों के पुरश्चरण में नील पद्म अथवा वह न मिले तब बिल्वपत्र से होम करें॥ १९७-१९८॥

ऋषिश्छन्दस्तथा बीजं शक्तिं कीलकमेव च।
सर्वत्रैव पृथक् विद्धि नाममन्त्रविभेदतः॥१९९॥
जपमन्त्रे च तारायाः साधने शक्तिजं कुलम्।
वीरभावरहस्योक्तं त्यक्त्वा साकारमाप्नुयात्॥२००॥
एतासां निगमागमप्रचलितं संगृह्य शैवं मतम्।
तारायाः परिपूजनं जपविधिं बीजं तथा तर्पणम्॥
ग्रन्थेऽस्मिन् विनिवेशितं खलु मया संस्मृत्य तारावचः
अत्रास्ते कमला कृताञ्जलिपरा वीणाधरा सारदा॥२०१॥

इनके ऋषि, छन्द, बीज, शक्ति, कीलक आदि सर्वत्र पृथक् होते हैं। साथ ही समस्त नाम एवं मन्त्रभेद को भी समझ लेना चाहिए।

मैंने निगम, आगम, साधारण ग्रन्थस्थ मतानुसार इसके विषय में निरूपण किया है। इसमें ब्रह्मानन्द के वचनानुसार तारा के जप-मत तथा साधन विषय में वीरभाव रहस्योक्त शक्तिज कुलत्याग करके साकार मार्ग में प्रवृत्त हो जायें। (अर्थात् शक्तिरहित कुल का त्याग करके शक्तियुक्त (कुलस्त्रीयुक्त) साकार मार्ग में प्रवृत्त हो जायें)॥ १९९-२०१॥

इति श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्य्यब्रह्मानन्दगिरितीर्थावधूतविरचिते तारारहस्ये सर्वरहस्योत्तमे हरगौरी-संवादे प्रथमः पटलः समाप्तः॥१॥

॥ प्रथम पटलान्तर्गत कुल्लूका प्रकरण पूर्ण॥

॥ प्रथम पटल पूर्ण॥

द्वितीयः पटलः

१– अथ तारादीक्षा प्रकरणम्

तत्र तारानिगमादौ कामाख्यामूले च–

'तारा निगमादि तथा कामाख्यामूल' में लिखा है–

कालीतारामन्त्रदाने चक्रचिन्तां करोति यः।
आयुर्विद्यामोक्षबाधः शूली विष्ठाकृमिर्भवेत्॥१॥
यदि भाग्यवशान्नाथ! ताराविद्या प्रलभ्यते।
इच्छासिद्धिर्भवेत्तस्य किं मोक्षश्चाष्टसिद्धये॥२॥
यदि मन्त्रे गुरुः साक्षात् सर्वतन्त्रे स्वयं हरः।
न दद्यात् तारकां विद्यां दातुं नैव वदेत् क्वचित्॥३॥
यदि भाग्यवशाद्वत्स! कोटिजन्मतपोबलात्।
लभेत तारकां विद्यां स भवेत् कल्पपादपः॥ ४॥

तारानिगम आदि तथा कामाख्यामूल में अंकित है कि– जो व्यक्ति काली तथा तारा के मन्त्रदान काल में चक्र चिन्तन करता है, उसकी आयु, विद्या तथा मोक्ष में व्याघात उत्पन्न होता है और उसको शूलरोग होता है एवं मरणान्त में वह विष्ठा का कीट होता है।

हे नाथ! यदि भाग्य से ताराविद्या प्राप्त हो जाये, तब समस्त अभीष्ट सिद्ध हो जाता है। उसके मोक्ष की तो बात ही क्या? उसे आणिमादि अष्टसिद्धियाँ हस्तगत हो जाती हैं।

सभी तन्त्रों में भगवान् हर ही सभी मन्त्रों के सम्बन्ध में गुरु हैं। ताराविद्या किसी को प्रदान न करें। देने का वादा भी न करें।

हे वत्स! यदि करोड़ों जन्म में भी तप बल से भाग्यवशात् ताराविद्या मिल जाये, तब वह कल्पवृक्ष हो जाती है॥ १–४॥

गोपनीयो गोपनीयस्तारामन्त्रः सदाशिव!।
यन्त्रं मन्त्रञ्च पटलं स्तोत्रं कवचमेव च॥५॥

रहस्यं गुह्यषोढाञ्च तारानिगममेव च।
गोपनीयं प्रयत्नेन तारां नैव प्रकाशयेत्॥६॥
कुलकर्मरतो यस्तु सत्त्वभावविवर्जितः।
मन्त्रे तन्त्रे गुरौ विप्रे लतायां वीरभावतः॥७॥
एतादृशाय कौलाय शठाय न कदाचन।
यो ददाति वरं तस्मै दातारञ्च शिवाज्ञया॥८॥

हे सदाशिव! तारामन्त्र अतीव गुप्त है। तारा का नाम ही केवल प्रकाश करना चाहिए। इसके अतिरिक्त उनका मन्त्र-पटल-स्तोत-कवच-रहस्य-गुह्यषोढा, तारानिगम सभी को यत्नपूर्वक उसे गुप्त रखे। कभी भी तारामन्त्र का प्रकाश न करें।

जो व्यक्ति कुल कर्मरत है, लेकिन सत्वभाव रहित है तथा तब भी मन्त्र, तन्त्र, गुरु, विप्र, लता (कुलस्त्री) सर्वत्र ही वीरभाव का अवलम्बन करता है, ऐसे कौल (कुल स्त्री) तथा शठ को कभी भी तारा का मन्त्र प्रदान न करें॥ ५-८॥

अर्थलोभी कामलोभी कर्मलोभी नरः क्वचित्।
ददाति यदि देवेशि! निरये पतति ध्रुवम्॥९॥
शिवहा त्रिषु लोकेषु शक्तिहा ब्रह्महा भवेत्।
स एव भ्रष्टः कौलेषु कोऽन्यो भ्रष्टो महीतले॥१०॥

हे देवेशि! अर्थलाभ, कामलाभ तथा कर्मलाभ की लालच में यदि यह मन्त्र कोई प्रदान करता है, तब उसे निश्चय ही नरक में पतित होना पड़ेगा। वह तीनों लोक में शिवहत्या, शक्तिहत्या, ब्रह्महत्या करने वाले के समान महापातकी हो जाता है। (लोगों को) उसके समान पृथिवी पर कोई भ्रष्ट प्रतीत नहीं होता॥ ९-१०॥

कुलीनाय महेच्छाय श्रद्धाभक्तिपराय च।
कौलसेवायुतायापि शक्तिसेवारताय च॥११॥
ताराभक्ताय शिष्टाय सदानन्दाय शूलधृक्!
एतेभ्यश्च प्रदातव्यं ह्यन्यथा मृत्युमाप्नुयात्॥१२॥

जो व्यक्ति कुलीन तथा सदभिसन्धान परवश, श्रद्धा तथा भक्तिसम्बन्ध है, जो व्यक्ति कौलगण की सेवा में लगा है तथा शक्ति (कुलस्त्री) सेवा में संसक्त है, तथा जो तारा के प्रति भक्तियुक्त है, शिष्ट तथा सदानन्दपूर्ण है, उसी को ताराविद्या प्रदान करे। इसके विपरीत इस कार्य को करने पर (अर्थात् अनाधिकारी के विद्यादान करने पर) वह निश्चय मृत्युमुख में पतित होगा॥ ११-१२॥

सद्‌गुरुं लक्षणाक्रान्तं स्वयं लक्षणसंयुतः।
प्राप्य दीक्षा प्रकर्त्तव्या ह्यन्यथा निष्फला क्रिया॥१३॥
विल्वमूले श्मशाने वा पर्वते वा नदीतटे।
गुरुगेहे महापीठे सिद्धिपीठे शिवालये॥१४॥
एकलिङ्गे तडागे वा वृषशून्यशिवालये।
दीक्षां कुर्य्यात् सदा मन्त्री जपञ्चापि समाचरेत्॥१५॥

शास्त्र लक्षण सम्पन्न सद्‌गुरु प्राप्त होने पर स्वयं लक्षणयुक्त गुणों का वरण करके दीक्षाग्रहण करें। इसके विरुद्ध विधान करने पर समस्त क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं।

विल्वमूल, श्मशान, नदीघाट, पर्वत, गुरुगृह, महापीठ तथा सिद्धपीठ, शिवालय, एकलिंग, तड़ाग, वृष (नन्दी) रहित शिवालय-इन सब स्थल में दीक्षा लेनी चाहिए तथा वहीं जप साधन करना चाहिए॥ १३-१५॥

पञ्चक्रोशान्तरे यत्र न लिङ्गान्तरमीक्षते।
तच्चैकलिङ्गमाख्यातं मन्त्रसिद्धिप्रदायकम्॥१६॥
यदि भाग्यवशाद्देवि! गङ्गातीरं प्रलभ्यते।
तत्र चेत् क्रियते दीक्षा कोटि-कोटि गुणायते॥१७॥

निषिद्धदीक्षा

यतेर्दीक्षां पितुर्दीक्षां दीक्षां मातामहस्य च।
सोदरस्य कनिष्ठस्य वैरिपक्षाश्रितस्य च॥१८॥
विविक्ताश्रमिणो दीक्षां न गृह्णीयात् कदाचन।
न पत्नीं दीक्षयेद्भर्त्ता न पिता दीक्षयेत् सुताम्॥१९॥

जहाँ ५ कोश इलाके में मात्र एक ही शिवलिंग हो, वही एकलिंग स्थान है। यह स्थान मन्त्रसिद्धि हेतु प्रधान स्थान है।

हे देवि ! यदि भाग्यवशात् गंगातट मिले तथा वहाँ यदि दीक्षा ग्रहण हो, तब वह करोड़ों गुणित फल प्रदान करती है।

माता-पिता-मातामह-कनिष्ठ सहोदर तथा वैरीपक्ष से दीक्षा न लें। स्वामी पत्नी को, पिता कन्या एवं पुत्र को, ज्येष्ठ भ्राता, कनिष्ठ भ्राता को कभी भी दीक्षा प्रदान न करे ॥ १६-१९॥

न पुत्रञ्च तथा ज्येष्ठः कनिष्ठं च दीक्षयेत्॥२०॥
दीक्षातृतीयदिवसे कृत्वा क्षौरादिकं शुभम्।

हविष्यं तद्दिने कार्य्यमुपवासं परेऽहनि।
गुरोराज्ञां समादाय पुष्पादि स्वयमाहरेत्॥२१॥
पंञ्च घटांश्च संस्थाप्य तत्र देवान् प्रपूजयेत्।
प्रथमे गणनाथञ्च द्वितीये च सदाशिवम्॥२२॥

दीक्षा ग्रहण के पूर्व वाले तीसरे दिन क्षौरादि शुभ-कार्य सम्पादन तथा उस दिन हविष्य भोजन करें तथा एक दिन पूर्व (दीक्षा से) उपवासी रहें। तदनन्तर गुरु-आज्ञा लेकर स्वयं पुष्पादि संग्रह में प्रवृत्त हो जायें। ५ घटों की स्थापना करके उसमें सम्यग् विधान से देवगण का पूजन करें। पहले घट में गणनाथ की तथा द्वितीय घट में सदाशिव का पूजन करें॥ २०-२२॥

तृतीये सुन्दरीं देवीं चतुर्थे परदेवताम्।
पञ्चमे सर्वदेवांश्च सर्वजिद्गुरुसत्तमः॥२३॥
स्वस्ति वाच्यं ततः कुर्य्यात् सङ्कल्पं विधिपूर्वकम्।
मुक्ता-माणिक्य-वैदूर्य्य-गोमेदान् वज्रविद्रुमौ॥२४॥

तृतीय में सुन्दरी देवी, चतुर्थ में परमदेवता तथा पञ्चम में सर्वदेवपूजन करके सर्वविद् गुरु सन्तम का पूजन करके स्वस्तिवाचन के साथ विधिवत् पूजन करें। इस समय पाँचों कलश में क्रमशः प्रथम में मणि-मुक्त-वैदूर्य-गोमेद, द्वितीय में हीरा-मूँगा, तृतीय में नीलम, चतुर्थ में मरमकमणि (पन्ना), पञ्चम में पद्मराग मणि प्रदान करें॥ २३-२४॥

नीलं मरकतं पद्मरागं पञ्चघटे न्यसेत्।
ततो मूलं सहस्रञ्च प्रजपेत् सद्गुरुः स्वयम्॥२५॥
करन्यासं ततः कृत्वा तत्त्वन्यासं ततः परम्।
पुष्पाद्यलङ्कृतं शिष्यं चन्दनेन प्रलेपयेत्॥२६॥

तदनन्तर गुरुदेव स्वयं मूलमत्र का १००० जप करके कण्ठन्यास तथा उसके अनन्तर तत्वन्यास विधान से करके तदनन्तर पुष्पादि द्वारा शिष्य का अलंकरण करके उसे चन्दन लगायें॥ २५-२६॥

ततो रत्नादिकुम्भस्थैस्तोयैः शिष्यं प्रसिच्य च।
शिष्यशीर्षे ततो हस्तं दत्त्वा चाष्टोतरं शतम्॥२७॥
जपेन्मन्त्रं गुरुश्रेष्ठः कपोले मूलमुच्चरन्।
ऋषिच्छन्दः कीलकञ्च शक्तिबीजमतः परम्॥२८॥

तदनन्तर रत्नादि कुम्भस्थ जल से शिष्य का अभिषेक करके उनके मस्तक पर अपना शिवहस्त स्थापित करना चाहिए। तत्पश्चात् कपोल के तल पर मूलमन्त्रोच्चारण करके १०८ बार मन्त्र जप करें।

उस समय ऋषि, छन्दः, शक्ति, बीज, कीलक, गायत्री-यह सब शिष्य के दाहिने कान में एक साथ कहें। इनका जप तीन बार दाहिने कान में ही करें॥ २७-२८॥

एकदा दक्षिणे कर्णे गायत्रीञ्च त्रिधा जपेत्।
ततो मन्त्रं प्रवक्तव्यं स्त्रीदीक्षा वामतः सकृत्॥२९॥
विधिरेष द्विजातीनां स्त्रीशूद्राणाञ्च वामतः।
ततश्च प्रणमेद्देवि! श्रीगुरुं सर्वलक्षणम्॥३०॥
स्वयं जप्त्वा ततो मन्त्रं दक्षिणादीन् समाचरेत्।
तारामन्त्रेषु सर्वेषु चैषा दीक्षा प्रकीर्त्तिता॥३१॥

अनेक मन्त्र कहें। स्त्री की दीक्षा में वामकर्ण में एक ही बार मन्त्रोच्चार करना चाहिए। यही विधि द्विजाति हेतु है। स्त्री तथा शूद्रों की दीक्षा में केवल वामकर्ण में मन्त्र कहना चाहिए। तत्पश्चात् शिष्य इष्टदेवी को तथा सर्वलक्षणयुक्त अपने गुरु को प्रणाम करें। तत्पश्चात् स्वयं भी जपोपरान्त दक्षिणा प्रदानादि कार्य करें। सभी तारामन्त्रों की दीक्षा हेतु यही दीक्षा कही गयी है॥ २९-३१॥

॥ द्वितीया पटलान्तर्गत तारा दीक्षा प्रकरण समाप्त॥

२-अथ शिवलिङ्गार्चन प्रकरणम्

शिवस्य पूजनं कार्य्यं पार्थिवस्य न चान्यथा।
सामान्यार्घ्यं प्रकर्त्तव्यमासनादीन् विशेषतः॥३२॥
योनिपीठाद्विष्णुपीठं लिङ्गाग्रात्तुल्यमूलकम्।
योन्यधः शेषपर्य्यन्तं त्रिसूत्रीकरणन्त्विदम्॥३३॥
न पूजयेत् पार्थिवं यः शिवलिङ्गं सुरेश्वरि।
नान्यपूजाफलं तस्य चण्डालत्वं प्रजायते॥३४॥
देवध्यानं ततः कृत्वा पुष्पं शीर्षे प्रदायपेत्।
प्रणवस्य च पाशस्य कलासंख्यकजापतः॥३५॥
विश्वं देहं शोधयित्वा भूतशुद्धिं समाचरेत्।
स्वनाभौ दक्षिणां पाणिं वामे पाणौ विधाय च॥३६॥

तदनन्तर उस समय पार्थिव शिवलिंग की पूजा करनी चाहिए। इसके बिना पूजा न करें। सामान्यार्घ्य विधान करें। विशेषतः आसन स्थापित करें। योनिपीठ से विष्णुपीठ, लिंगाग्र से तुल्यमूल, तथायोनि के अन्त तक। यहाँ तक आसन कल्पना करें। यही तान्त्रिक कर्म है, त्रिसूत्री करण।

हे सुरेश्वरि! जो व्यक्ति पार्थिव शिवलिंग की पूजा नहीं करता, उसको पूजा का फललाभ नहीं होता। उसे चाण्डालत्व लाभ होता है।

तदनन्तर देवता का ध्यान करके मस्तक पर पुष्प प्रदन करना होगा। तत्पश्चात् प्रणव एवं पाश मन्त्र (ॐ ह्रीं) का कला संख्यक (१६) जप करके समस्त देहशोधनार्थ भूतशुद्धि करें। तदनन्तर स्वकीय नाभि पर तथा बायें पर हाथ दाहिना हाथ स्थापित करें॥ ३२-३६॥

चतुर्विंशतितत्त्वेन सार्द्धं जीवस्य तोलनम्।
प्रदीपकलिकाकारं सर्वतेजोमयं विभुम्॥३७॥
प्रविभिद्याखिलं चक्रं परब्रह्मणि योजयेत्।
मूलाधाराग्निशिखया सर्वं देहं विदाहयेत्॥३८॥

२४ तत्वों के साथ जीव को (प्राण को) उठायें। तदनन्तर समस्त चक्रों का भेदन करके प्रदीपकालिकाकृति, सर्वतेजोमय, परम विभावविशिष्ट जीव को परब्रह्म के साथ सम्मिलित करके मूलाधारस्थ अग्निशिखा द्वारा समस्त देह को दग्ध करें॥ ३७-३८॥

सर्वरूपं शरीरञ्च पापेन पुरुषेण च।
दक्षनासापुटं धृत्वा कलासंख्यं जपेच्च यः॥३९॥
पूरयित्वा ततो वायुं चतुःषष्टिजपेन च।
कुम्भयेत् परमं वायुं ततो द्वात्रिंशतं जपेत्॥४०॥
रेचयेद्वामतो वायुं लिङ्गदेहं विनाशयेत्।
वह्निबीजं जपेद्देवि! पूर्वसंख्यानुसारतः।
सर्वं भस्ममयं ध्यात्वा ततो भस्मविरेचनम्॥४१॥

पापपुरुष के साथ समस्त शरीर को इस प्रकार से (भावना) द्वारा दग्ध करें। तब दक्षिणानासिका धारण करके १६ संख्यक जप करें (दक्षिणनासिका बन्द करके)।

इसके पश्चात् ६४ बार जप करके कुम्भक करके ३२ बार जप करते हुए इस वायु को रोके रहें।

तदनन्तर वाम नासिका से वायु का रेचन करके लिंगदेह को (भावना द्वारा) नष्ट करने के उपरान्त पूर्वसंख्या प्रभेद क्रमानुसान वह्निबीज (रं) का जप करके सब भस्ममय हो रहा है, यह ध्यान करें॥ ३९-४१ ॥

पृथ्वीबीजं ततो जप्त्वा कलया प्लावयेत्तनुम्।
महाविष्णुः स्वयं साक्षादित्येवं ज्ञानसंकुलः॥४२॥

अब इस भस्म को कल्पना द्वारा उड़ाकर पृथिवी बीज (लं) का १६ बार जप करके कला द्वारा (कलाभावना द्वारा) शरीर को प्लावित करना चाहिए। इस प्रक्रिया से ज्ञानी साधक स्वयं ही महाविष्णु हो जाता है॥ ४२ ॥

पुनश्च चन्द्रबीजेन चतुःषष्टिजपेन च।
स्थिरीकृत्य निजं देहं कुम्भयेद्वायुमण्डलम्॥४३॥
द्वात्रिंशद्वारुणजपादमृतेन विरेचयेत्।
साधयेत् परया भक्त्या दिव्यरूपं मनोहरम्॥४४॥
भाले चन्द्रञ्च सम्भाव्य विभूतिं परिधारयेत्।
वामहस्ते समानीय पयश्च शुष्कभस्मकम्॥४५॥
यज्ञभस्मसमायोगं वृषभस्मनि कारयेत्।
प्रजपेत्तत्र मन्त्रञ्च शिवस्यापि षडक्षरम्॥४६॥
शूद्रः पञ्चाक्षरं जप्त्वा प्रिये! षोडशसंख्यकम्।
पठेत्तत्र महादेवि! मन्त्रमेतद्द्वयं पुनः॥४७॥

पुनः चन्द्रबीज का ६४ बार जप करके अपनी देह के स्थिरीकरण की भावना करके वायु को कुंभित करके ३२ बार वरुण बीज (वं) का जप करें। तदनन्तर अमृत द्वारा उसका विरेचन करें। (वायु छोड़ दें)। तदनन्तर परम भक्ति के साथ मनोहर दिव्य साधन तथा दिव्यदेह लाभ करके (भावना द्वारा लाभ करके) ललाटस्थ चन्द्रमण्डल का ध्यान करने के उपरान्त उस भस्म की (देहभस्म की भभूत) विभूति लगा लें (भावना द्वारा)। तदनन्तर जल तथा शुष्क भस्म को बायें हाथ में लेकर वृषभस्म में यज्ञभस्म मिला दें। इससे शिव के 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र का तथा मूलोक्त 'ॐ अग्निरीति' इत्यादि वैदिक मन्त्र का जप करना चाहिए। क्षुद्र पञ्चाक्षर (नमः शिवाय) शिव मन्त्र का १६ जप करके उसका पाठ पुनः दो बार करना चाहिए॥ ४३-४७॥ (भस्म मन्त्र मूलोक्त 'ॐ अग्निरिति' से लेकर श्लोक ४८ तथा ४९ में है।)

ॐ अग्निरिति भस्म जलमिति भस्म सर्वहरं परम्। भस्म मे चक्षूंषीन्द्रियाणि भस्मनि दध्यात्, शाम्भवं पशुपाशविमोक्षणाय।

ॐ भस्मरूपं परब्रह्म परा शक्तिरितीरिता।
भस्म ज्ञेयं परं ज्ञानं परं तत्त्वस्वरूपकम्॥४८॥
परानन्ददं भस्म ज्ञानकल्पे व्यवस्थितम्।
विधारयामि तद्भस्म पशुपाशविमुक्तये॥४९॥
ततश्च ब्रह्मणो गद्यं मन्त्रं तस्य षडक्षरम्।
शूद्रः पञ्चाक्षरं मन्त्रं धारयेत् सदा॥५०॥
मृगमुद्रां समासाद्य ललाटे बिभृयाच्छुभम्।
मूलेन प्रणवेनापि प्राणायामं समाचरेत्॥५१॥
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्यन्नासापुटधारणम्।
प्राणायामः स विज्ञेयः पूरकैः कुम्भरेचकैः॥५२॥

तदनन्तर ब्राह्मण षडक्षर गद्यमन्त्र एवं क्षुद्र पञ्चाक्षर मन्त्र पढ़कर सर्वदा भस्म लगायें। तत्पश्चात् मृगमुद्रा प्रदर्शन के साथ ललाट में भस्मधारण पूर्वक प्रणव युक्त मूलमन्त्र पाठ पूर्वक प्राणायाम करें।

पूरक, कुम्भक और रेचक के सहयोग से कनिष्ठा तथा अनामिका द्वारा नासापुटों को दबाकर वायु का पूरक-कुम्भक तथा रेचन करें। यही प्राणायाम है॥४८-५२॥

कलाचतुष्टयं तस्य द्विगुणेन विरेचयेत्।
क्रमात् क्रमात् त्रयं कृत्वा मानसेनापि पूजयेत्॥५३॥
ज्ञानिनामपि सिद्धिः स्यान्न्यासमेतत् समाचरेत्।
पशुपतये नमः शीर्षे, मुखे च हरये नमः॥५४॥
कण्ठे श्रीनीलकण्ठाय रुद्राय चोरसि न्यसेत्।
कपाले धूम्रनेत्राय मूले श्रीशम्भवे नमः॥५५॥
पादयोर्भैरवायैव शिवाय दक्षबाहुतः।
कलाय वामबाहौ च पृष्ठे ज्ञानाय एव च॥५६॥

द्विगुण क्रम से उसके कलाचतुष्टय का विरेचन करके क्रमशः ३ बार विधानपूर्वक अर्थात् १६ बार जप करके पूरक, ६४ बार जप द्वारा कुम्भक तथा ३२ बार जप करके रेचन करें। इस प्रकार प्राणायाम ३ बार विधिपूर्वक मन ही मन मानस पूजा करें। इससे ज्ञानीगण को सिद्धि मिलती है। उस समय न्यास करना होगा। जैसे मस्तक पशुपति का, मुख में हर का, कण्ठ में श्रीनीलकण्ठ का, उरु में रुद्र का, कपाल में धूम्रनेत्र का, मूल में श्री शम्भु का, पादद्वय में भैरव का, दक्षिणबाहु में

शिव का, वामबाहु में काल का, पृष्ठ में ज्ञान का तथा सर्वांग में क्रोध का न्यास करें॥ ५३-५६॥

क्रोधाय सर्वगात्रेषु विन्यसेच्छिवपूजने।
षड्दीर्घभाजा बीजतेन कुर्य्यादथ षडङ्गकम्॥५७॥

शिवपूजा में यही न्यास विधि है। छह दीर्घस्वरयुक्त बीज द्वारा षडङ्ग तथा कराङ्गन्यास करके दसों दिशाओं का दिग्बन्धन करना चाहिए। 'ऊं हराय नमः' का उच्चारण करें मृत्तिका आहरण करें॥ ५७॥

कराङ्गञ्च तथा न्यस्य दशदिग्बन्धनञ्चरेत्।
हराय नम उच्चार्य्य मृदञ्चैवाहरेत् शुचिः॥५८॥
महेश्वरचतुर्थ्यन्तं नमोऽन्तं गठनञ्चरेत्।
शूलपाणे इहोच्चार्य्य सुप्रतिष्ठो भव स्वयम्॥५९॥
प्रतिष्ठाप्य ततः सिद्धे दत्त्वावाह्य प्रपूजयेत्।
पाद्यमर्घ्यञ्च गन्धञ्च पुष्पं धूपञ्च दीपकम्।
नैवेद्यादीनि दत्त्वा च पूजयेत् परमेश्वरम्॥६०॥

तत्पश्चात् 'ॐ महेश्वराय नमः' कहकर उसके गठन में लगे तदनन्तर 'ॐ शूलपाणे इहागच्छ स्वयं सुप्रतिष्ठाभव' कहकर उसी मिट्टी से शिवलिंग के गठनोपरान्त उसकी प्रतिष्ठा, आह्वान, पादादि दान तथा पूजन करें। पाद्य-अर्घ्य, गन्ध-पुष्प-धूप-दीप तथा नैवेद्यादि दान करके परमेश्वर पूजन करें॥ ५८-६०॥

मोचाफलं सवृन्तञ्च शिवलिङ्गे ददाति यः।
तस्य पूजां महादेवि! गृह्णामि प्रयतात्मनः॥६१॥
तस्य सिद्धिर्भवेद्देवि नियता सफला सदा।
पुरःस्थित्वा मूलमन्त्रं जपेद्दशसहस्रकम्॥६२॥
पशुपतये नम इति लिङ्गं संस्थापयेद् बुधः।
विल्वपत्रस्य माहात्म्यं वक्तुं कः शक्त एव हि॥
विल्वपत्रैर्विना देवि! लिङ्गपूजा तु निष्फला॥६३॥

जो व्यक्ति पुरोभाग में अवस्थानपूर्वक सम्यक् संयत होकर वृन्त सहित केला शिवलिंग को प्रदान करते हैं, मैं उसे दोनों हाथों से ग्रहण कर लेता हूँ। पुरोभाग में बैठकर १०००० बार मूलमन्त्र जपने के अनन्तर 'ॐ नमः पशुपतये' कहकर लिङ्गस्थापना करनी चाहिए। कोई भी विल्वपत्र के सम्पूर्ण माहात्म्य को नहीं बतला सकता। हे देवि! विल्वपत्र बिना लिंगपूजा निष्फल है॥ ६१-६३॥

पूजयेत् परया भक्त्या चाष्टमूर्त्तिं शिवस्य च।
आग्नेय्यान्तां प्रपूज्याथ वेद्यां लिङ्गे शिवं यजेत्॥६४॥
लिङ्गवेदी भवेद्देवी लिङ्गं साक्षान्महेश्वरः।
तयोश्च पूजनात् स्यातां देवीदेवौ सुपूजितौ॥६५॥

पूर्णभक्ति के साथ महादेव की अष्टमूर्ति का पूजन करें। अग्निकोण पर्यन्त पूजनोपरान्त वेदीस्थ लिंग शिव की पूजा करें। हे देवि! लिङ्गदेवी साक्षात् देवी हैं। और लिङ्ग साक्षात् महेश्वर हैं। इन दोनों की पूजा करने से देव-देवी दोनों की पूजा हो जाती है॥ ६४-६५॥

ॐ सर्वाय क्षितिमूर्त्तये नमः, ॐ भवाय जलमूर्त्तये नमः, ॐ रुद्राय अग्निमूर्त्तये नमः, ॐ उग्राय वायुमूर्त्तये नमः, ॐ भीमाय आकाशमूर्त्तये नमः, ॐ पशुपतये यजमानमूर्त्तये नमः, ॐ महादेवाय सोममूर्त्तये नमः, ॐ पशुपतये यजमानमूर्त्तये नमः, ॐ महादेवाय सोममूर्त्तये नमः, ॐ पशुपतये यजमानमूर्त्तये नमः, ॐ महादेवाय सोममूर्त्तये नमः, ॐ ईशानाय सूर्य्यमूर्त्तये नमः। इत्यनेनाष्टमूर्त्तीः पूजयेत्।

पुष्पाञ्जलित्रयं देवि! शङ्कराय निवेदयेत्।
स पूजाफलमाप्नोति नान्यथा लक्षपूजनात्॥६६॥

अब क्रहे-'ॐ सर्वाय क्षितिमूर्त्तये नमः' से लेकर मूलोक्त 'ॐ ईशानाय सूर्यमूर्त्तयो नमः' पर्यन्त से क्रमशः आठों मूर्त्तियों का पूजन करना चाहिए। तदनन्तर महादेव को तीन बार पुष्पांजलि प्रदान करें। इस विधान से पूजा का फल मिलता है। अन्यथा लाखों बार की गई पूजा निष्फल है॥ ६६॥

ततो मूलं प्रजप्तव्यं देवि ! चाष्टोत्तरं शतम्।
सजलैर्विल्वपत्रैश्च जपन् लिङ्गे समर्पयेत्॥६७॥
ॐ गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणस्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव! त्वत्प्रसादान्महेश्वर!॥६८॥

हे देवि! तदनन्तर अष्टोत्तर शत बार शिव के मूलमन्त्र का जप करें। 'हे देव! आप गुह्यातिगुह्य गोप्ता हैं। मेरे किये जप को ग्रहण करिये। हे देव! हे महेश्वर! आपकी कृपा से हमें सिद्धि प्राप्त हो।' इस मन्त्र का उच्चारण करके जलयुक्त विल्वपत्र से वह जल लिंग को प्रदान करें॥ ६७-६८॥

स्तोत्रञ्च लिङ्गार्चनचन्द्रिकादावनुसन्धेयं कवचञ्च। ततो मुखवाद्यादिकञ्चरेत्।

सम्पूज्य पार्थिवं लिङ्गं मुखवाद्यं चरेत्तु यः।
शिवसायुज्यमाप्नोति तथा करतलध्वनिम्॥६९॥

अर्द्ध प्रदिक्षणं कृत्वा प्रणमेत् पार्वतीश्वरम्।
याम्याच्च गच्छेत् कौवेरीं पुनस्तत्रागतिश्चरेत्॥७०॥
पृष्ठे हस्तं समादाय मह्यां जानुद्वयं तथा।
शीर्षावनामं दत्त्वा तु चार्द्धचन्द्राकृतिर्भवेत्॥ ७१॥

इनके लिए स्तोत्र तथा कवच को 'लिङ्गार्चन चन्द्रिका' में देखे। तदनन्तर मुखवाद्यादि बजायें। जो पार्थिव लिंग की पूजा करके मुखवाद्य तथा ताली बजाता है उसे शिवसायुज्य प्राप्त होता है।

अब अर्द्धप्रदक्षिणा करके पार्वतीश्वर को प्रणामोपरान्त दक्षिण से उत्तर गमन करें! पुनः उत्तर से दक्षिण की ओर लौटें। यही है अर्द्ध प्रदक्षिणा। अब प्रणाम बताते हैं। पीठ पर हाथ रखकर पृथिवी पर जानुमूल स्थापित करके मस्तक को भूमि पर लगाना, यह अर्द्धचन्द्राकृति बनाकर प्रणाम करें॥ ६९-७१॥

यो दद्यात् संविदापात्रं शङ्कराय महेश्वरि!।
अश्वमेधकृतं पुण्यं पात्रेणैकेन जायते॥७२॥
द्वादश्यां शाङ्करं देवि! लिङ्गं दृष्ट्वा तु पार्थिवम्।
संविदापात्रमादाय सर्वं दद्यात् कृताञ्जलिः॥७३॥

हे महेश्वरी! जो व्यक्ति महेश्वर को संविदा (भांग) प्रदान करता है। उसके मात्र इस एक दान से ही उसे अश्वमेध यज्ञ का पुण्य मिलता है।

द्वादशी के दिन महादेव के पार्थिव लिंग का पूजन दर्शन करके संविदा पात्र प्रदान करके समस्त दान करें (चढ़ायें)॥ ७२-७३॥

नार्चयेच्छङ्करस्यापि लिङ्गं यस्तु नरः क्वचित्।
न विष्णुभक्तः शाक्तो वा न शैवः स नराधमः॥७४॥

जो कभी भी शिवलिंग पूजन नहीं करता, जो व्यक्ति विष्णु के प्रति भक्तियुक्त नहीं है, अथवा शाक्त भी नहीं है, शैव भी नहीं है, उसे नराधम जानें॥ ७४॥

हरस्य पार्थिवं लिङ्गं पूजयित्वा नरो यदि।
जले संस्थापयेद्देवि! स दरिद्रो भवेद् ध्रुवम्॥७५॥
पूजयित्वा तु यो लिङ्गं पार्वतीप्रियमुत्तमम्।
स्थापयेद्भुवि रौद्रे च दन्दशूकं प्रयाति सः॥७६॥
शिवलिङ्गं पूजयित्वा भूमौ संप्रापयेत् किल।
अथवा स्थापयेत्तोये दन्दशूकं व्रजेन्नरः॥७७॥

नृत्य-गीत-वाद्य तथा नामोच्चारण इन सभी उपायों से शिव को सन्तुष्ट करके संहारमुद्रा प्रदर्शन करके कहे 'क्षमस्व' अर्थात् क्षमा करिये। अब विसर्जन करके स्नान-मन्त्रादि से पवित्र तथा विशुद्धिकरण करें। यदि कोई पार्थिव लिंग को पूजनोपरान्त जल में रखता है, तब वह निश्चय ही दरिद्र हो हो गया।

जो पार्वती प्रिय तथा सर्वश्रेष्ठ शिवलिंग का पूजन करके भूमि अथवा धूप में स्थापित करता है, वह निश्चय ही सर्पयोनि प्राप्त करेगा।

कोई यदि शिवलिंग पूजनोपरान्त जल में स्थापित करेगा उसे दन्दशूकर योनि प्राप्त होगी॥ ७५-७७॥

यत्र यत्र नवकश्रुतिस्तत् सुधीभिर्न कार्य्यम्। दरिद्राभिभवञ्च न कार्य्यम्। किन्तु महालिङ्गेश्वरतन्त्रे उभयत्र दोषश्रवणात्।'दन्दशूकं व्रजेन्नरः'इति श्रवणाच्च। भूमौ प्रापणमेव कार्य्यं तदभावे जले वा क्षिपेत्। शम्भुं भागीरथीजलं विना न जले कूपोदके पूजयेत्।

न जले पूजयेच्छम्भुं भागीरथीजलं बिना॥ इति यामले।

त्रिपुरानन्देनमदगुरुणा व्याख्यातम्। पूजने गङ्गाजले विल्वपत्रादिभिर्विनापि न च सामान्यजले। जले सामान्यजले न स्थापयेत्। मुद्रादर्शनादिभिर्न पूजयेदित्यर्थः। तथा तारानिगमे महालिङ्गेश्वरतन्त्रे च।

पार्थिवं नार्चयित्वा तु कालीं ताराञ्च सुन्दरीम्।
अर्चयेद् यस्त्रिलोकस्थः स गच्छेद् यमयातनाम्॥७८॥

लिंग स्थापना में जिस-जिस स्थल पर नरकश्रुति कही गयी है, उत्तम बुद्धिशाली ज्ञानी व्यक्तिगण उसमें प्रवृत्त न हों अर्थात् वहाँ शिवलिंग स्थापित न करें। तदनुरूप अनुष्ठान उचित है। जिससे दरिद्र न होना पड़े। किन्तु महालिङ्गेश्वर तन्त्र में तो दोनों जगह ही दोष कहा गया है। अतः लिंगभूमि पर ही रखना चाहिए। इसी प्रकार उस पर जल छोड़ें। भागीरथी के जल के बिना महादेव की पूजा नहीं होती। ऐसा ही यामल ग्रन्थ में कहा है। गुरुदेव ने इसकी व्याख्या की है-'विल्वपत्रादि न हो तब भागीरथी के जल से भी पूजन कर सकते हैं। लेकिन सामान्य जल से कदापि पूजन न करें। सामान्य जल शिवलिंग पर न छोड़ें। मुद्राप्रदर्शनादि से पूजा न करें, तारानिगम एवं महालिङ्गतन्त्र में यही कहा गया है। पार्थिव लिंग पूजन के बिना त्रिभुवन में जो व्यक्ति काली, तारा, सुन्दरी की अर्चना करता है, उसे दमयातना भोगना निश्चित है॥ ७८॥

एतेनादौ महाविद्यां पूजयित्वा शिवपूजां वदन्ति, तत्र लिङ्गार्चनचन्द्रिकायाम्।

महाविद्यां पूजयित्वा शिवपूजां समाचरेत्।

अन्यथा करणाद्देवि! न पूजाफलमाप्नुयात्॥७९॥

इति महाविद्यानां प्रशंसार्थं शिववाक्यम्। तथा च त्रिपुराकल्पे-

यावन्न पूजयेल्लिङ्गं पार्थिवं साधकाधमः।
तस्य पूजां न गृह्णाति सुन्दरी तारकासिता॥८०॥

कोई कहते हैं कि पहले महाविद्या पूजनोपरान्त शिवपूजन करें। यह निर्देश यथार्थ नहीं है। लिंगार्चन चन्द्रिका में ऐसा नहीं कहा गया है। महाविद्या पूजन करके शिवपूजा करने से यह अन्यथा कार्य है। इससे पूजाफ़ल नहीं मिलेगा। इसे केवल महाविद्या की प्रशंसार्थ ही कहा है। त्रिपुराकल्प में कहते हैं कि साधकाधम जब तक लिंग की पूजा नहीं करता, तब तक सुन्दरी-तारा-तथा असिता (काली) उसका पूजन ग्रहण नहीं करतीं॥ ७९-८०॥

इति श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्य्यब्रह्मानन्दगिरितीर्थावधूतविरचिते तारारहस्ये शिवलिङ्गपूजनम् द्वितीयः पटलः समाप्तः॥ २॥

॥ द्वितीय पटलान्तर्गत शिवलिंग पूजन पूर्ण॥

३- अथान्तर्याग-प्रकरणम्

तत्रादौ शक्तिसारे-

प्रातःकृत्यं चरेदादौ प्रातःसन्ध्यां ततः परम्।
ततः स्नानं विधायाथ सन्ध्यां माध्याह्निकीं तथा॥८१॥
शिवपूजां ततः कुर्य्यात् तथान्तर्यजनं शिव!।
ततः पूजा विधातव्या ततो होमं समाचरेत्॥८२॥
बलिं दद्यात्ततो देव्यै होमं कुर्य्यात्ततः परम्।
भोगं दत्त्वा महादेव्यै सायंसन्ध्यां समाचरेत्॥८३॥
ततो योगो विधातव्यस्ततः साधनमुत्तमम्।
एवं प्रकारमासाद्य तारकां साधयेद यदि।
तदा सिद्धिमवोप्नोति नान्यथा कल्पकोटिभिः॥८४॥
स्तवञ्च कवचञ्चापि सहस्राख्यं पठेत्ततः।
प्रपठेत् साधकश्रेष्ठस्त्रिसन्ध्यं कार्य्यसिद्धये॥८५॥

शक्तिसारतन्त्र में कहते हैं कि पहले प्रातःकृत्य करके तब प्रातः संध्या करें। तदनन्तर स्नानान्त में माध्याह्निकी संध्या करने के उपरान्त शिवपूजा एवं अन्तर्यजन करना चाहिए।

तत्पश्चात् पूजान्त में होम तथा देवी को बलि अर्पित करके षोढ़ान्यास करें।

तदनन्तर महादेवी को योग्यवस्तु प्रदान करने के पश्चात् सायं संध्या में प्रवृत्त हो जायें। तत्पश्चात् योगविधान द्वारा साधन करना चाहिए।

इस प्रकार नियमानुसार करके साधना द्वारा सिद्धिलाभ होता है। इसके विरुद्ध करने पर करोड़ों कल्पों में भी सिद्धि नहीं मिलती।

तदनन्तर साधक सहस्रनाम स्तव तथा कवच पढ़ें। साधक श्रेष्ठ को चाहिए कि कार्य सिद्धि के लिए तीनों संध्या में यही करें॥ ८१-८५॥

एतेन शिवपूजान्तर्यजनस्य कर्त्तव्यत्वं, तदैव लिख्यते तारासारे निगमे च-

न पूजाफलमाप्नोति विनान्तर्यजनं शिव!।
तस्मादर्चनतः पूर्वमन्तर्यागं समाचरेत्॥८६॥

इसके लिए शिवपूजाकाल में अन्तर्यजन अवश्य करें। तारासार तथा तारानिगम में कहते हैं कि अन्तर्यजन के अभाव में पूजाफल प्राप्त ही नहीं होता। अतएव पूजा के पहले अन्तर्यजन में अवश्य प्रवृत्त होना चाहिए॥ ८६॥

तथा चैकजटापक्षे-

स्वकीयहृदये ध्यायेत् सुधासागरमुत्तमम्।
रत्नद्वीपञ्च तन्मध्ये सुवर्णाबालुकामयम्॥८७॥
पारिजातवनं तत्र रत्नानाञ्चापि मन्दिरम्।
श्मशानं तत्र संचिन्त्य तत्र कल्पद्रुमं स्मरेत्॥८८॥
तन्मध्ये मणिपीठञ्च नानामणिविभूषितम्।
चतुर्दिक्षु शवैर्मुण्डैश्चिताङ्गारास्थिभूषितम्॥८९॥
विभाव्य यत्नतो मन्त्री तत्त्वदीपे वसेत् स्वयम्।
ब्रह्मरन्ध्रे सदा ध्यायेन्महादेवं जगद्गुरुम्॥९०॥

एकजट साधनार्थ अपने हृदय में सुधासमुद्र का ध्यान करें। इसमें सुवर्ण बालुकामय रत्नद्वीप, परिजातवन, कल्पवृक्ष, रत्नों के मन्दिर तथा श्मशान का चिन्तन करना होगा। उसमें नानारत्नभूषित मणिपीठ तथा चतुर्दिक शव-मुण्ड-अंगार तथा अस्थिभूषण की भावना करके यत्नतः (भावना में) स्वयं उस द्वीप में वास करें। सर्वदा ब्रह्मरन्ध्र में जगद्गुरु महादेव का ध्यान करना चाहिए॥ ८७-९०॥

तस्य वामस्थितां देवीं तारां तारस्वरूपिणीम्।
विभाव्य प्रणमेद्विद्यां प्रात कृतिरितीरिता॥९१॥

उनके वामभाग में विराजमाना तार स्वरूपा देवी तारा का ध्यान करके ॐकार रूपा मूलविद्या तारा को प्रणाम करें। यह प्रातःकालीन कृत्य है॥ ९१॥

ब्रह्मरन्ध्रे बिन्दुरूपं पुष्करं तीर्थमुत्तमम्।
प्रकुर्य्यात् साधकस्तत्र स्नानं सर्वमलापहम्॥९२॥
वधूबीजस्वरूपे च शिवतीर्थं हृदि न्यसेत्।
मध्ये सुषुम्नानाड्यां तु स्नायात् साधकसत्तमः॥९३॥

ब्रह्मरन्ध्र में बिन्दुरूपेण पुष्करतीर्थ की कल्पना करके साधक उसमें सर्वमल विनाशी स्नान तथा वधूबीजरूप हृदय में शिवतीर्थन्यास की कल्पना करके सुषुम्ना नाड़ी में स्नान करें, यही स्नानविधि है॥ ९२-९३॥

इति स्नानम्

स्वकीयहृदये ध्यायेत् सिंहासनमनन्यधीः।
तत्र सम्भाव्यते शय्या ज्ञानानन्दस्वरूपिणी॥९४॥
शिवं तत्र विभाव्याथ सर्वालङ्कारभूषितम्।
दिगम्बरं महाकायमुन्मत्तं कामभावतः॥९५॥
शय्यायामूर्ध्वलिङ्गञ्च भावयेत् साधकाग्रणीः।
भावयेच्च ततो देवीममृतानन्दरूपिणीम्॥९६॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभां नानालङ्कारभूषिताम्।
पारिजातान्वितां देव्याः कवरीं परिभावयेत्॥९७॥

साधक अनन्यचित्त होकर अपने हृदय में सिंहासन का ध्यान करके उस पर ज्ञाननन्दस्वरूपा शय्या तथा उस शय्या पर सर्वालंकारविभूषित, दिगम्बर, कामभावोन्मत्त, महाकाय, ऊर्ध्वलिंग महादेव की भावना करें। तदनन्तर अमृतानन्दरूपा, तप्तकाञ्चन वर्ण रूपा स्त्री जनोचित अलंकार शोभिनी देवी का चिन्तन करके उसमें पारिजात कुसुमयुक्त देवी की करवी का ध्यान करें॥ ९४-९७॥

त्रिसन्ध्यं सन्ध्या कर्त्तव्या मन्त्रसिद्धिमभीप्सता।
माता कामेश्वरी देवी पिता कामेश्वरः शिवः।
श्रद्धावान् भावयित्वा च अष्टसिद्धीश्वरो भवेत॥९८॥

मन्त्र सिद्धि की कामना करके तीनों संध्याओं में संध्या करें। कामेश्वरी माता तथा कामेश्वरी शिव पिता है। श्रद्धापूर्ण अन्तःकरण से इनकी भावना करके व्यक्ति अष्टसिद्धि का अधिनायक हो जाता है। यही संध्या है॥ ९८॥

इति सन्ध्या

सर्वतेजोमयीं देवीं शिवशक्तिं यतात्मिकाम्।
ज्वलत्सूर्य्याग्निचन्द्राभां तडित्कोटिसमप्रभाम्॥९९॥
भावयेत् साधको यस्तु ध्यानयोगेन निश्चलः।
इति ध्यानं विधातव्यं साधकैमन्त्रसिद्धये॥१००॥

ध्यानयोग तत्पर साधक सर्वतेजोमयी सर्वात्मिका संयतमना देवी शिव-शक्ति की भावना करें। कोटि तड़ित् के समान उनकी प्रभा है तथा वे प्रज्वलित सूर्य-अग्नि तथा चन्द्रवत् कान्तिवाली हैं। साधक मन्त्रसिद्धि हेतु ऐसा ध्यान करें। यही ध्यान है॥ ९९-१००॥

इति ध्यानम्

ब्रह्मरन्ध्रचन्द्रपात्रात्तर्पयेत्तारिणीं पराम्।
तत्रस्थसूर्य्यपात्रेण चार्घ्यं दद्यान्मनोहरम्॥१०१॥

ब्रह्मरन्ध्रस्थ चन्द्रपात्र से परमस्वरूपा तारिणी का तर्पण तथा वहाँ सूर्यपात्र से मनोहर अर्घ्य प्रदान करें॥ १०१॥

दयापुष्पं क्षमापुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहम्।
ज्ञानपुष्पं पुण्यपुष्पमहिंसापुष्पमुत्तमम्॥१०२॥
आचारपुष्पं मे देवि! स्वयम्भू पुष्पमुत्तमम्।
आनन्दपुष्पं दातव्यं पुष्पञ्च साधकार्चनम्॥१०३॥
दशपुष्पं यः प्रदद्यात् स गच्छेत्तारकापदम्।
त्रिलोकस्थशुभद्रव्यैः पूजयेत् साधकोत्तमः॥१०४॥

दया, ज्ञान तथा क्षमारूप पुष्प, इन्द्रियनिग्रहरूप पुष्प, ज्ञानदानरूप, परमपवित्र पुष्प, अहिंसारूपी उत्कृष्ट पुष्प, आचारपुष्प, अत्युत्कृष्ट स्वयम्भू पुष्प, आनन्दरूप परमपवित्र पुष्प तथा साधकार्चनरूप पुष्प, जो साधक इन सब दस पुष्पों को यत्नतः दान करता है, वह तारापद प्राप्त करेगा। इसके अतिरिक्त त्रिलोकी के उत्कृष्ट द्रव्य द्वारा देवी की पूजा करनी चाहिए॥ १०२-१०४॥

तत्त्वं दद्यात्तारकायै मत्स्यमांसमन्वितम्।
तदा सिद्धिमवाप्नोति न जपान्न कुलार्चनात्॥१०५॥
प्रजपेद् वर्णमालाभिर्न्यासपूर्वं कुलेश्वरः।
हृदपद्मे षोडशारञ्च विन्यसेत् षोडशस्वरम्॥१०६॥

देवी तारा को मांस-मद्य समन्वित तत्व (मद्य) प्रदान करें। इससे सिद्धि मिलती है। अन्यथा केवल जप अथवा कुलार्चन से सिद्धि नहीं मिलती। यही पूजाविधि है।

कुलेश्वर साधक न्यासपूर्वक वर्णमाला द्वारा यत्नतः जप करें। हृत्पद्म में १६ स्वरों से शोभित षोडशार पद्म विन्यस्त करें। अर्थात् हृत्पद्म के १६ दलों में १६ स्वरों को विन्यस्त कर दें॥ १०५-१०६॥

पूर्वादितः समारभ्य वह्निकोणान्तपत्रतः।
आधारे विन्यसेद्विद्वान् ककारादिचतुष्टयम्॥१०७॥
पश्चिमादिदले न्यस्य चोत्तरान्तं सुसाधकः।
लिङ्गमूले न्यसेत् पद्मे षड्दले चोत्तरक्रमात्॥१०८॥
ङकारादिञकारान्तं षड्वर्णं साधकोत्तमः।
नाभिमूले न्यसेद्वर्णं टादिढान्तं मनोहरम्॥१०९॥
दक्षिणादिक्रमान्न्यस्य वर्णरूपान्महामनून।
विन्यसेत्तालुमूले च चतुर्दशदलान्विते ॥११०॥
धकारादिसकारान्तमिन्द्रवर्णं न्यसेद्बुधः।
ललाटे च भ्रुवोर्मध्ये हक्षौ वर्णौ न्यसेत् सदा॥१११॥

यह स्वर विन्यासमय विधि है कि पूर्वादिदिक् से प्रारंभ करके अग्निकोण में स्थित पत्र पर्यन्त आधार में ककारादि वर्णचतुष्टय, पश्चिमादि दल में उत्तरान्त न्यस्त करके लिंगमूलस्थ षट्दल पद्म में उत्तरादि क्रमेण ङ कार से ञकार पर्यन्त मनोहर वर्णचतुष्टय न्यस्त करके दक्षिणादिक्रमेण वर्णरूप महामनु समूह का न्यास करना होगा। तदनन्तर चतुर्दशलान्वित तालूमूलस्थ कमल में धकार से मकार पर्यन्त चतुर्दशवर्ण विन्यस्त करके ललाट में (भ्रूद्वय मध्य में) 'ह' तथा 'क्ष' वर्ण का न्यास करें॥ १०७-१११॥

आदौ दक्षे तथा वामे शुक्लपत्रे सुनिश्चतम्।
द्वादशार्णे न्यसेद्विद्वान् कादिठान्तान् सुसिद्धये।
ङकारादिविसर्गान्तान् सहस्रारे न्यसेत् सदा।
एवञ्चान्तर्मातृकाणां विना न्यासेन पार्वति॥११२॥
अन्तःपूजां चरेद् यस्तु स गच्छेत् यमसादनम्॥११३॥

तदनन्तर आदि में वाम तथा दक्षिणभाग में द्वादशार्णविभूषित शुक्रपत्र में सम्यग्रूप से सिद्धिसंघटनार्थ 'क' से 'ठ' पर्यन्त का विन्यास करें। पहले दक्षिण की ओर तदनन्तर वाम की ओर वर्ण विन्यास करना होगा हे पार्वती! जो साधक इस प्रकार से अन्तमातृकाओं का न्यास किये बिना अन्तःपूजन में प्रवृत्त होता है, वह यमलोक जाता है॥ ११२-११३॥

अकारादिक्षकारान्तं हक्षवर्णौ च मध्यतः।
नादबिन्दुसमायुक्तं वर्णान्ते प्रजपेन्मनुम्॥११४॥
अनुलोमविलोमेन जपेदष्टोत्तरं शतम्।
अ कु चु टु तु पु यु शु अष्टवर्गेषु संजपेत्॥११५॥

इस प्रकार से मातृकान्यासोपरान्त वर्णमाला से जप करना चाहिए। अकार से क्षकार पर्यन्त प्रत्येक वर्ण के नादबिन्दु को संयुक्त करके मन्त्रजप करें। 'ह्' तथा 'क्ष' अक्षरद्वय के मध्य एक-एक 'ल' का पाठ होगा। इस प्रकार से वर्णोच्चारण करके तब जप करना चाहिए। एवं अनुलोम-विलोम क्रमेण, अर्थात् पहले 'अ से क्ष तक', पुनः विपरीत रूप से क्ष से अ पर्यन्त सौ जप करके अ क च ट त प य श इन अष्टवर्ग का अष्ट बार जप करें॥ ११४-११५॥

नादबिन्दुसमोपेतं सर्ववर्णं व्यवस्थितम्।
स्त्रीशूद्रयोरेतदेव नादबिन्दुविवर्जितम्।
नादबिन्दुसमायुक्तं जप्ये न्यासे च मोक्षदम्॥११६॥

'अ' शब्द से अवर्ग अर्थात् षोडश स्वर वर्ण, 'क' शब्द से कवर्ग, 'च' शब्द से चवर्ग, 'ट' से टवर्ग 'त' शब्द से तवर्ग, 'प' शब्द से पवर्ग, 'य' से यवर्गस्थ चार वर्ण अर्थात् य र ल व तथा 'श' से श ष स ह ल क्ष य षड्वर्ण युक्त करके जप करें। (संस्कृत में यरलव के अनन्तर पुनः एक 'ल' का विधान है।) तारार्णव में कहते हैं कि सभी वर्णों को नादबिंदु युक्त करके वर्ण जप करना विहित है। लेकिन यह शूद्र तथा स्त्री हेतु विहित नहीं है। वर्ण रूप को नादबिन्दु संयुक्त करके जप करने पर मोक्ष लाभ होता है॥ ११६॥

एतेन मोक्षश्रवणात् सर्ववर्णानामर्द्धचन्द्रखण्डभूषितवर्णजपे न्यासे चाधिकारः। स्त्रीशूद्रयोस्तु विसर्गोकारबिन्दूनां न चन्द्रखण्डयोगः। तथा च तारासारे-

निश्चन्द्रं न चरेद्वर्णं जपे न्यासे च शूलधृक्।
अन्यथाकरणान्मूढो नरकं याति निश्चितम्॥११७॥
स्वकीयहृदये ध्यायेद् योनिमण्डलमुत्तमम्।
राजभिश्च समोपेतं त्रिकोणं सर्ववर्णाकम्॥११८॥
कामाख्यायोनिं संभाव्य नीलपद्मनुस्मरन्।
हुनेत् षोडशवारञ्च घृतैर्लिङ्गोद्भवैर्धिया॥११९॥
ततः प्रदक्षिणां कुर्य्यान्मानसेन शिवां त्रयम्।
इत्यन्तर्यजनं मूढोऽकृत्वा यः पूजयेत् पराम्।
न पूजाफलमाप्नोति तारायाः कोटिजन्मतः॥१२०॥

इस वक्तव्य में मोक्षलाभ की बात कही गयी। यह उल्लेख रहने के कारण न्यास तथा वर्णरूप में सभी वर्णों को अर्द्धचन्द्र से विभूषित करके उन वर्णों का उच्चारण करके जप तथा न्यास का अधिकार युक्ति तर्क समर्थित हो जाता है। किन्तु केवल स्त्री तथा शूद्र हेतु विसर्ग, ओंकार तथा बिन्दु के साथ चन्द्रखण्ड (ँ) चन्द्रबिन्दु लगाना निषिद्ध है।

तारासार में भी कहा है कि जप-न्यास काल में अर्द्धचन्द्र रहित वर्ण योजना न करें (लेकिन स्त्री-शूद्र हेतु यह मना है)। जो इस नियम को नहीं मानता, वह मूढ़ निश्चित रूप में नरकगामी हो जाता है।

अपने हृदय में कोणत्रयभूषित, सर्ववर्णविमण्डित उत्तम योनिमण्डल का ध्यान करके तदनन्तर कामाख्या योनि की भावना तथा नीलपद्म का स्मरण करते हुए वृद्धि के साथ लिंग से समुद्भुत घृत (वीर्य) द्वारा १६ बार होम करें।

तदनन्तर मन-ही-मन शिवा की तीन बार प्रदक्षिणा करें। जो मूढ़ व्यक्ति इस प्रकार से अन्तर्यजन नहीं करता और तारादेवी का पूजन करता है, वह करोड़ों जन्मों में भी पूजनफल नहीं पा सकता। इसी को अन्तर्यजन कहा है॥ ११७-१२०॥

इत्यन्तर्यजनम्

अथोग्रतारान्तर्यागः

अथोग्रतारकायाश्च अन्तर्यागं वदाम्यहम्!
स्वकीये हृदये ध्यायेत् सुधासागरमुत्तमम्॥१२१॥
हृत्पद्मे षोडशारे च तर्पयेदुग्रतारिणीम्।
दले दले महादेवीं मूलमन्त्रमनुस्मरन्॥१२२॥
तस्या योनौ हुनेद्वत्स! मन्त्रेणानेन साम्प्रतम्।
ओं नाभिचैतन्यरूपाग्नौ हविषा मनसा स्रुचा॥१२३॥
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम्।
प्रकाशकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनाः स्रुचा।
धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णावह्नौ जुहोम्यहम्॥१२४॥

अब उग्रतारा का अन्तर्याग कहते हैं। अपने हृदय में उग्रतारा के अन्तर्याग को कहता हूँ। अपने हृदय में स्वर्गीय सुमनोहर सुन्दर सुधासागर का चिन्तन करके हृदयपद्म में षोडशदल के प्रत्येक दल में महादेवी तथा मूलमन्त्र का ध्यान करके उस पद्म के

षोडशपत्रों में उग्रतारिणी का तर्पण करें। हे वत्स! तदनन्तर उनकी योनि में 'मूलोक्त ॐ नाभिचैतन्य' से लेकर 'हविषा मनसा स्रुचा' तक पढ़ते हुए होम करें॥ १२१-१२४॥

ततश्च वर्णमालाभिर्जपेदष्टोत्तरं शतम्।
प्रदक्षिणीकृत्य ततः प्रणिपत्य सुखञ्चरेत्॥ १२५॥

तदनन्तर वर्णमाला द्वारा १०५ जप, प्रदक्षिणा प्रणाम करके यथासुख विचरण करें। यही है उग्रतारा का अन्तर्यजन॥ १२५॥

इत्युग्रतारान्तर्यजनम्

अथनीलसरस्वत्यन्तर्यजनम्

स्वकीये हृदये ध्यायेत शारदां नीलरूपिणीम्।
प्रत्यालीढपदां देवीं व्याघ्रचर्मावृतां कटौ॥ १२६॥

अब नीलसरस्वती की अन्तर्यजन विधि कहते हैं। अपने हृदय में नीलरूपा शारदा का ध्यान करें। वे प्रत्यालीढ़पदा अर्थात् वामपद आगे करके दक्षिणपद को पीछे किये स्थिता हैं। उनका कटिदेश व्याघ्रचर्मावृत है॥ १२६॥

हास्यवक्त्रां महाघोरां यजेन्नीलसरस्वतीम्।
विपरीतरताशक्तां वागीशत्वप्रदायिनीम्॥ १२७॥
पाययित्वा सुधाधारां मत्स्यमांससमन्विताम्।
चसकेन ददेद्वक्त्रे चासवं मांससंयुतम्॥ १२८॥
महाहृदि परं ध्यायेन्नीलवाणीं सुरेश्वरीम्।
आसवोन्मत्तहृदया शिववक्त्रे पुनः पुनः॥ १२९॥

उनका मुखमण्डल हास्यविकसित हैं। वे अतीव घोर प्रकृति भीमरूपा विपरीत रतासक्ता हैं। इनकी अर्चना से वागीशत्व प्राप्त होता है।

इस प्रकार इनका ध्यान तथा अर्चन करें। मत्स्यमांस समन्वित सुधाधारा पान करके सुरापान पात्र द्वारा देवी के वक्त्र में मांससंयुक्त आसव प्रदान करें।

तदनन्तर महाहृदय में सुरेश्वरी नील सारस्वत का ध्यान करें। वे आसवपानोन्मत्त हृदय से शिव के चेहरे पर पुनः-पुनः लगकर वायु सहयोग से उनका चुम्बन ले रही हैं॥ १२७-१२९॥

पपात वातयोगेन चुम्बनञ्च करोति हि।
पादपद्मं महादेवि! विधृत्य निजहस्ततः॥ १३०॥
उत्थाय तारिणीवक्त्रं स चुम्बति पुनः पुनः।

तस्य वक्त्रे प्रदद्याच्च मत्स्यं दग्धं महासवम्॥१३१॥
दग्धमत्स्यं दग्धमांसं शोणितं पशुदेहतः।
शूकरस्योष्ठमांसञ्च भगलिङ्गमृतं तथा॥१३२॥

महादेव भी अपने हाथ से उनके पादपद्म को यत्नतः धारण करके उठ रहे हैं तथा पुनः-पुनः उनके मुख का चुम्बन करते जा रहे हैं। महादेव उनके मुख में दग्ध (पमा) मत्स्य, महासव, दग्धमांस, पशु का रक्त, शूकर के ओष्ठ का मांस तथा भगलिंगामृत पान करा रहे हैं॥ १३०-१३२॥

दद्यान्नीलसरस्वत्यै चोच्छिष्टं हरवक्त्रके।
पुनः पुनः पूजयित्वा पूजयेद्वर्णमालया।
इत्यन्तर्यजनं प्रोक्तं नीलवाण्याः सुशोभनम्॥१३३॥

उस समय नीलसरस्वती को यह सब प्रदान करके उनका जूठन महादेव के मुख में निवेदित करके बार-बार पूजा करने के अनन्तर पुनः वर्णमाला से पूजा करें। यही नीलसरस्वती का सर्वशोभन अन्तर्यजन कहा गया॥ १३३॥

योऽर्चयेत् परया भक्त्या हस्ते तस्य सदा वसेत्।
सर्वसिद्धिर्महादेवि! वक्त्रे वाणी वसेद् ध्रुवम्॥१३४॥

हे महादेवी! जो परमभक्तियुक्त होकर यह पूजन करता है, समस्त सिद्धियाँ उनके करतल में हो जाती हैं और स्वयं सरस्वती उसके मुख में वास करती हैं॥ १३४॥

दिवारात्रौ कुलाचारे चैवं यस्तु विभावयेत्।
तस्य भोगश्च मोक्षश्च वाञ्छासिद्धिः करे वसेत्॥१३५॥

जो व्यक्ति कुलाचार प्रवृत्त होकर दिनरात इस प्रकार की भावना करता है, उसके करतल में भोग-मुक्ति तथा इच्छासिद्धि वास करती हैं। यही है नीलसरस्वती का अन्तर्यजन॥ १३५॥

(पूर्ण)

इति नीलसरस्वत्या अन्तर्यजनम्

अथ एकजटामन्त्रोद्धारः

ब्राह्मणेतरवर्णानां षट्कोणं कर्णिकागतम्।
ब्राह्मणानां सदा लेख्यं त्रिकोणं कर्णिकागतम्॥ १३६॥

अब एकजटा मन्त्रोद्धार कहते हैं। ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य वर्णवाले के

लिए कर्णिकान्तर्गत षट्कोण तथा ब्राह्मणों के लिए सर्वदा कर्णिकान्तर्गत त्रिकोण बनाएं॥ १३६॥

मध्ये कूर्चं लिखेद्विद्वान् वृत्तद्वयमतः परम्।
ततश्चाष्टदलं लेख्यं चतुर्बीजसमन्वितम्॥१३७॥
पूर्वे लज्जा वधूर्दक्षे उत्तरे फः प्रकीर्त्तितः।
पश्चिमे टं समाख्यातं कोणे च रेणुकायुतम्।
चतुरस्त्रं चतुर्दारं लिखेद् यन्त्रं सुशोभनम्॥१३८॥
एवं यन्त्रं परित्यज्य भिन्नयन्त्रे प्रपूजयेत्।
तस्यै दत्त्वा रुषा शापं देवी याति हरं प्रति॥१३९॥

विद्वान् साधक कूर्च (हूँ) लिखकर, बाद में वृत्तत्रय बनायें। इसके पश्चात् उसमें चतुर्बीज युक्त अष्टदल का अंकन करें।

पूर्वदल में लज्जाबीज (ह्रीं), दक्षिण में वधूबीज (स्त्रीं) उत्तर में 'फ' तथा पश्चिम में 'ट' अंकित करके कोणों में रेणुकायुक्त (सूक्ष्म गन्धद्रव्य के चूर्ण से) चतुष्कोण तथा चतुर्द्वारयुक्त सुशोभन यन्त्र अंकित करें॥ १३७-१३९॥

अस्या भेदेन ताराया वक्ष्यामि तदनन्तरम्।
त्रिकोणञ्च त्रिवृत्तञ्च लिखेच्चापि चतुर्दलम्॥१४०॥
ततश्चाष्टदलं लेख्यं द्विवृत्तं तदनन्तरम्।
चतुरस्त्रं चतुर्द्वारं कामताराप्रपूजने॥१४१॥

एतासां धरणयन्त्र यथा-

लेकिन कामतारा पूजनार्थ विभिन्न व्यवस्था है। त्रिकोण, त्रिवृत्त तथा चतुर्दल बनाकर तदनन्तर अष्टदल तदनन्तर द्विवृत्त एवं चतुरस्त्र तथा चतुर्द्वार बनाये। कामतारा के पूजनार्थ यही विधि विहित है॥ १४०-१४१॥

एतासां धारणयन्त्रं यथा-

त्रिकोणं साधकाख्यञ्च षट्कोणं तदनन्तरम्।
लिखेदष्टदलं पद्मं षोडशस्वरसंयुतम्॥१४२॥
पद्मावत्याश्च मन्त्रेण सप्तवर्णेन वेष्टयेत्।
चतुरस्त्रं चतुर्द्वारं कोणे वज्रसमन्वितम्॥ इति।१४३॥

इनका धारणयन्त्र इस प्रकार है-

पहले साधक का नाम लिखकर त्रिकोण, तदनन्तर अष्टकोण, तदनन्तर षोडश

स्वरयुक्त अष्टदल पद्म बनायें। पद्मावती के सप्तवर्ण मन्त्र से उसका वेष्टन करके तथा कोणों में वज्र समन्वित चतुरस्र एवं चतुर्द्वार अंकित करें॥ १४२-१४३॥

मन्त्रोद्धार प्रकरण पूर्ण

अथोग्रतारायन्त्रम्

नवकोणं लिखेदादौ पञ्चपत्रसमन्वितम्।
द्विवृत्तं द्विगुणं पद्मं सर्वत्र रेणुभूषितम्॥१४४॥
चतुरस्रं चतुर्द्वारमुग्रताराप्रपूजने।
षट्कोणञ्च चतुष्कोणं पञ्चवृत्तसमन्वितम्॥१४५॥
लिखेदष्टदलं पद्मं चतुरस्रादिकं तथा।
वर्त्तुलं बिन्दुसंयुक्तं षट्कोणं तदनन्तरम्।
लिखेदष्टदलं पद्मं भूगृहं तदनन्तरम्॥१४६॥

उग्रतारा का यन्त्र इस प्रकार है- पहले पञ्चपत्र युक्त नवकोण अंकित करके सर्वत्र गन्ध युक्त रेणु से द्विगुण द्विवृत्त अर्थात् चतुर्वृत्त पद्म एवं चतुरस्र तथा चतुर्द्वार सन्निबद्ध करें।

तदनन्तर पञ्चवृत्तसमन्वित षट्कोण, चतुष्कोण, चतुरस्र अंकित करके तत्पश्चात् वर्त्तुल, षट्कोण, अष्टदल पद्म तथा भू गृह की रचना करनी चाहिए॥ १४४-१४६॥

अथ नीलतारिणीयन्त्रम्

त्रित्रिकोणं समं लेख्यं मध्ये बिन्दुसमन्वितम्।
द्विवृत्तं षड्दलं विद्धि त्रिवृत्तं द्वादशं दलम्॥१४७॥
पुनर्वृत्तत्रयं लेख्यं चतुर्द्वारात्मकं गृहम्।
द्वित्रिकोणञ्च षट्कोणं वृत्तं चाष्टदलं तथा।
पुनर्वृत्तं कलापत्रं चतुर्द्वारात्मकं गृहम्॥१४८॥

अब नीलतारिणी यन्त्र कहते हैं- मध्य में बिन्दुयुक्तसम तथा नवकोण पद्मांकन करके द्विवृत्त षट्दल, तदनन्तर त्रिवृत्त द्वादशदल तथा तदनन्तर पुनः वृत्तत्रय तथा चतुर्द्वारात्मक गृह अंकित करें।

साधारण यन्त्रमेकजटा प्रकरणोक्तं सर्वत्र इति नरयन्त्रोद्धारः।

पुनः दो त्रिकोण, षट्कोण, वृत्त, अष्टदल, तत्पश्चात् वृत्त, षोडशदल तथा चतुर्द्वारात्मक गृह अंकित करना होगा। सर्वत्र एकजटा प्रकरणोक्त साधारण यन्त्र ही विहित है। यह नवयन्त्र उद्धृत हो गया॥ १४७-१४८॥

अथ यन्त्रसंस्कारः

तारानिगमे-

ताम्रपात्रे कपाले वा श्मशाने काष्ठनिर्मिते।
स्वर्णे रौप्येऽथवा लौहे यन्त्रं कुर्य्याद्विधानतः॥१४९॥

संस्कारस्य नित्यतामाह तारासारे-

असंस्कृते तु ये यन्त्रे पूजयन्ति नराधमाः।
पुण्यज्ञानसुतैर्हीनाः साधने सिद्धयः कथम्?॥१५०॥
यन्त्रं लिखित्वा ये पूजां न कुर्वन्ति दिने दिने।
तेषां पूजां न गृह्णन्ति देवाः सिद्धिः कथं भवेत्?॥१५१॥

तत्पश्चात् यन्त्र संस्कार विधान कहते हैं- तारानिगम में कहा गया है कि ताम्रपात्र, कपाल, श्मशान काष्ठ, स्वर्ण अथवा लौह में से किसी एक पात्र (पत्तर) पर यथाविधान यन्त्र लेखन करना चाहिए।

तारासार में संस्कार नियम कहते हैं- जो असंस्कृत यन्त्र पूजन करते हैं, वे नराधम हैं। उनका ज्ञान-पूजनादि नष्ट हो जाता है। सिद्धि की तो बात ही क्या!

जो यन्त्र लेखनोपरान्त उसका नित्य पूजन नहीं करते, देवगण उनकी पूजा ग्रहण नहीं करते। वह पूजा असुरगण भोग करते हैं॥ १४८-१५१॥

यन्त्रस्य लेखनेऽशक्तः पुष्पयन्त्रे प्रपूजयेत्।
अपरायां जवायाञ्च द्रोणे च करवीरके॥१५२॥
गौरीपट्टे शिवस्यापि तत्त्वपात्रेऽथवा पुनः।
अभावे सर्वयन्त्राणां शालग्रामे जलेऽर्चयेत्॥१५३॥

तारासार में ही लिखा है कि जो यन्त्र लेखन में अशक्त हैं, वे पुष्पयन्त्र से पूजन करें। अपराजित, जवा, द्रोण, कनेर पर तथा शिवलिंग के गौरीपट्ट पर, शिव के तत्वपात्र पर, इनके अभाव में शालग्राम अथवा जल में सभी यन्त्रों की अर्चना कर सकते हैं॥ १५२-१५३॥

सुमर्त्त्यां सर्ववर्णाञ्च तद्यन्ते च प्रपूजयेत्।
शालग्रामेतरे यन्त्रे शस्यते शूद्रयोषितः।
गौरीपट्टे तु पूजायां पाषाणादौ न पार्थिवे॥१५४॥

तथा शक्तियामले

पार्थिवे योनिवेद्यास्तु पूजने रेणुनाशकृत्।
पच्यते नरके घोरे न मोक्षः कोटिजन्मतः॥ इति॥१५५॥
रक्तासनस्थितो वीरः कामाख्यामुख एव च।
लिखेदष्टदलं पद्मं कुङ्कुमेन सुसिद्धये॥१५६॥

शालग्राम शिला को छोड़कर अन्य उल्लिखित यन्त्रों पर स्त्री-शूद्र पूजा कर सकते हैं। गौरीपट्ट पाषाण का हो, पार्थिव न हो।

शक्तियामल में कहा है कि शिवलिंग में योनीपीठ पर पार्थिव पूजन से रेणुनाश के साथ घोर नरक यातना होती है। उसे करोड़ों जन्मों में भी मोक्ष नहीं मिलता।

वीरसाधक वज्रासनासीन होकर कामाख्या मुख के पूर्वमुख सिद्धिकामना से कुंकुम से अष्टदल पद्म रचें॥ १५४-१५६॥

तत्र संस्थापयेद् यन्त्रं पञ्चगव्येन सेचयेत्।
वीक्षणं मूलमन्त्रेण अस्त्रेण पुष्पताडनम्॥१५७॥
मूलेन निक्षिपेद्विन्दून् लेपयेच्चन्दनेन च।
गन्धपुष्पाक्षतैर्यन्त्रं समभ्यर्च्य विलोकयेत्॥१५८॥

इस पद्म में यन्त्रस्थापना करके पंचगव्य से अभिषेक करें। तदनन्तर मूलमन्त्रोच्चार से यन्त्र दर्शन, षट्मन्त्र से पुष्प द्वारा उसका ताड़न, मूलमन्त्र से उसमें बिन्दु देकर चन्दन से उसका लेपन करके गन्ध-पुष्प-अक्षत द्वारा सम्यक् विधान से यन्त्रार्चनोपरान्त उसका विलोकन करें॥ १५७-१५८॥

ॐ यन्त्रराजाय विद्महे सर्वाधाराय धीमहि तन्नो यन्त्रः प्रचोदयात्।

एतया वापि गायत्र्या शतैस्तमभिमन्त्रयेत्।
देवताभावमासाद्य मूलमन्त्रशतं जपेत्॥१५९॥
प्रतिष्ठोक्तक्रमेणापि प्रतिष्ठाप्य निरीक्षयेत्।
गायत्र्या देवतायास्तु शतं तमभिमन्त्रयेत्॥१६०॥
देवीं तत्र समावाह्य दशमूलेन मन्त्रयेत्।
पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा चोपचारैश्च पूजयेत्॥१६१॥
कलाभिर्दशाभिर्वापि पञ्चभिर्वाप्यशक्तितः।
तर्पणन्तु ततः कृत्वा शतमष्टोत्तरं हुनेत्॥१६२॥

तदगन्तर 'ॐ यन्त्रराजाय विद्महे, सर्वधाराथ धीमहि, तन्नो यन्त्रः प्रचोदयात्' से

देवताभावेन उसका संस्कार करके १०० बार मूलमन्त्र जप तथा प्रतिष्ठोक्त (प्रतिष्ठार्थ कहें) क्रम से या प्रतिष्ठापित करके उसका निरीक्षण करें।

तदनन्तर देवता की गायत्री द्वारा १०० बार अभिमन्त्रित करके देवी को उसमें समावाहन (आह्वान) करके दस बार यन्त्र को मूलमन्त्र से अभिमन्त्रित करें।

तदनन्तर आठ बार पुष्पांजलि प्रदान करके नाना उपचारों से पूजा करके दश अथवा पाँच ५ बार तर्पण करें तथा तर्पण करके १०८ होम करें॥ १५९-१६२॥

होमकर्मण्यशक्तश्चेद् द्विगुणं जपमाचरेत्।
प्रणम्य धार्य्यं तद्यन्त्रं सदा सद्भावसिद्धये।
गुरुणा कारयेद्वापि स्वयं वापि विशोधयेत्॥१६३॥
ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां वैश्यानां हरसुन्दरि!।
योषितामपि शूद्राणां चाधिकारोऽत्र सद्विधौ॥१६४॥

होम में जो अशक्त हों, वे दूना जप करें। तदनन्तर प्रणामोपरान्त सर्वदा सद्भाव सिद्धि हेतु, उस यन्त्र को धारण करें। गुरु द्वारा यन्त्र का शोधन करायें अथवा स्वयं शोधन करें।

हे हरसुन्दरी! इस प्रकार के सदानुष्ठान में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा स्त्री आदि सभी का अधिकार है॥ १६३-१६४॥

सर्वत्र होमे पूजायां संस्कारे बालकस्य च।
प्रयोगे यत्र संशुद्धौ स्रजः संस्कारकर्मणि॥१६५॥
शवानाञ्च चितानाञ्च लतानाञ्चापि साधने।
लज्जा तु प्रणवस्थाने ह्रीं बीजं वह्निवल्लभा॥१६६॥
सेतुस्थाने कूर्च्चबीजं षोढायां कामबीजकम्।
स्वर्गमोक्षप्रदं विद्धि सर्वत्र शूद्रयोषितः॥१६७॥

शूद्र तथा स्त्रीगण सर्वविध होम-पूजन बालक संस्कार, मालाप्रयोग, संशोधन, मालासंस्करण, शव साधन, चितासाधन तथा लतासाधन में प्रणव की जगह लज्जाबीज (ह्रीं), सेतु स्थान में कूर्चबीज (हूं) तथा षोढ़ा में कामबीज (क्लीं) का विन्यास करके स्वर्ग तथा मोक्ष प्राप्त करते हैं॥ १६५-१६७॥

इति श्रीब्रह्मानन्दपरमहंसपरिव्राजकावधूतविरचिते
ताराहस्ये द्वितीय पटले मन्त्रसंस्कारः।
॥ द्वितीय पटल पूर्ण॥

अथ मालाप्रकरणम्

तारानिगमे-

नृकपालस्य खण्डेन रचिता जपमालिका।
महाशङ्खमयी माला अकस्मात् सिद्धिदा स्मृता॥१६८॥
दन्तजैर्वा प्रकर्त्तव्या तथा चाङ्गुलिपर्वभिः।
काली तारा महाविद्या यन्त्रे तिष्ठत्यतन्द्रिता॥१६९॥

तारानिगम में कहते हैं कि नर कपालखण्ड में विरचित जपमाला तथा महाशंखमयी माला शीघ्र सिद्धि देती है।

(नर के) दाँत द्वारा अथवा अंगुलि द्वारा जपमाला बनायें। काली तथा तारा इस यन्त्र में सतत् जागरित स्थिति में शोभिता होकर विद्यमान रहती हैं॥ १६८-१६९॥

अभावे स्फाटिकी माला महाशङ्खस्य शङ्कर!।
शोधयित्वा जपेन्मन्त्रं सर्वकामार्थसिद्धये॥१७०॥
महाशङ्खजपाद्वत्स! अकस्मात् सिद्धिभाग् भवेत्।
मन्त्रसिद्धिः स्फाटिके स्याद्रुद्राक्षे सर्वसिद्धिभाक्॥१७१॥
कुशग्रन्थिः शान्तिके स्यात् खरदन्ता च मारणे।
उच्चाटने चाश्वदन्ता वश्ये प्रवालमालिका॥१७२॥
विद्यायाञ्च धने चापि स्त्रियामाकर्षणे तथा।
शत्रूणां स्तम्भने वापि माला रौप्यमयी तथा॥१७३॥

महाशंख के अभाव में स्फटिक की माला का शोध करके उससे कार्य करने से सर्वकामनार्थ सिद्धि होती है।

स्फटिक माला का विशेष रूप से शोधन करके जप करें। हे वत्स! महाशंख की माला से जप करने से तत्काल सिद्धि लाभ होता है।

स्फटिक माला से जप द्वारा मन्त्र सिद्ध होता है। रुद्राक्ष से सर्वसिद्धि संघटित होती है। शक्ति कार्य में कुशग्रन्थि, मारण में गर्दभ के दाँत, उच्चाटन में घोड़े के दाँत तथा वशीकरण में प्रवाल माला उत्तम है।

विद्या-धन-आकर्षण (स्त्रियों का), शत्रुस्तम्भन, इन कार्यों में चाँदी की माला व्यवहार्य है॥ १७०-१७३॥

संस्कारे नित्यतामाह-

यश्चासंस्कृतमालाभिर्मन्त्रं जपति मानवः।
तस्मै दत्त्वा रुषा शापं देवी याति हरं प्रति॥१७४॥
त्रिकोणं संलिखेद्भूमौ मालां तत्र निधापयेत्।
देवप्रतिष्ठामन्त्रेण तत्र देवीं प्रतिष्ठयेत्॥१७५॥
संस्कृत्य तत्त्वं तेनैव सहस्त्रबिन्दुकं क्षिपेत्।
सिन्दूरकरवीराद्यैः पूजयेत्तारिणीं पराम्॥१७६॥

माला संस्कार में नित्यता होती है। जो व्यक्ति बिना माला संस्कार किये जप करता है, उस पर देवी कुपित होकर उसका अभिसम्पात करके शिव के पास चली जाती हैं।

भूमि पर त्रिकोण बनाकर उसमें माला को सन्निवेशित करें तथा देवप्रतिष्ठा मन्त्र से उसमें देवी की प्रतिष्ठा करें।

तदनन्तर (मद्य संस्कार) तत्त्वसंस्करण करके उसकी एक हजार बूँदें छिड़ककर सिन्दूर तथा कनेर आदि के पुष्पों से तारिणी का पूजन करें॥ १७४-१७६॥

तुलसीगोमयास्पृष्टां गङ्गास्पृष्टाञ्च मालिकाम्।
गोपयेद्बहुयत्नेन गुरोरपि न दर्शयेत्॥१७७॥
अपमृत्युगतस्यापि चास्थि विप्रेतरस्य च।
स्त्रीकर्णवेधे देवेशि चास्थि चादाय यत्नतः।
धमन्या ग्रथयेन्मालां रक्तसूत्रेण वा पुनः॥१७८॥

इस माला का स्पर्श तुलसी अथवा गोबर से न कराएं तथा उसका स्पर्श गंगाजल से भी नहीं करना चाहिए। माला को यत्नतः गुप्त रखें, यहाँ तक कि गुरु को भी न दिखलायें।

जिसकी अकालमृत्यु हो गई हो। ऐसे ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य वर्ण की अस्थि ले अथवा जिसका कान न छिदा हो ऐसी स्त्री की अस्थि का यत्नतः संग्रह करके उसकी धमनी (नसों) से अथवा लाल धागे से माला को गूंथे यही महाशंख माला होती है॥ १७७-१७८॥

अथ सामान्यमाला

मारणे पञ्चदशकमष्टादश सदोच्चटे।
अष्टाविंशतिमालाभिर्वश्येऽप्याकर्षणे तथा॥ १७९॥
धनार्थं त्रिंशता जप्यं सिद्धौ स्यात् पञ्चविंशतिः।
एकपञ्चाशन्मनुभिः सर्वसिद्धिमवाप्नुयात्॥ १८०॥

अब सामान्य माला कहते हैं-मारण में ५०, उच्चाटन में १८, वश्य अथवा आकर्षणार्थ २८, धनार्थ ३०, सिद्धि हेतु २५ बार माला द्वारा जप करें। १५० मन्त्र जप से सभी सिद्धि संग्रहीत हो जाती है॥ १७९-१८०॥

ब्राह्मणी कन्यका या तु अनूढा स्यात कलेवरे ।
कृतसूत्रैश्च कर्त्तव्यं स्त्रजं सर्वसुखावहम्॥१८१॥
शान्तौ कार्पाससूत्रं स्यात् सिद्धौ स्याद्रक्तसूत्रकम्।
ज्ञानसूत्रं वर्णरूपे कृष्णसूत्रन्तु मारणे॥१८२॥
आकर्षणे नीलसूत्रं धमनी सर्वसिद्धिदा।
त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य दृढरज्जु-समन्वितम्॥१८३॥
सार्द्धद्वयावेष्टनेन ग्रन्थिं कुर्य्याद् यथा दृढम्।
ब्रह्मग्रन्थियुतां कुर्य्याद् ग्रन्थिं वापि त्रिवेष्टिताम्॥१८४॥

जिसे रजोदर्शन नहीं हुआ है ऐसी अनूढ़ा ब्राह्मणकन्या द्वारा सूत कतवाकर उससे माला गुंथवाने सें सभी प्रकार से सुख होता है।

शान्तिकार्य में कपास सूत प्रशस्त है। सिद्धि में रक्तवर्ण, वर्णरूप में ज्ञानसूत्र (?), मारण में कृष्णसूत्र, आकर्षण में नील सूत्र तथा धमनी से माला गूंथने से सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

पक्के सूत को ९ गुना (बटकर) २½ वेष्टनपूर्वक दृढ़ रूप से ब्रह्मग्रन्थि बनायें। अथवा ग्रन्थि को पुनः ब्रह्मग्रन्थि युक्त तथा त्रिवेष्टित करके ग्रन्थि लगायें॥ १८१-१८४॥

अथवा ग्रन्थिकं तत्र दृढरज्जु-समन्वितम्।
एषा पुण्यमयी माला सर्वसिद्धिप्रदा मता॥१८५॥

अथ शोधनम्

अश्वत्थपत्रनवकैः पक्षाकारन्तु कारयेत्।
तन्मध्ये स्थापयेन्मालां मातृकालमूलमुच्चरन्।
क्षालयेत् पञ्चगव्येन वामदेवेन घर्षयेत्॥१८६॥

वामदेवस्तु महाकुलार्णवे-ॐ वामदेवाय सर्वसिद्धीश्वराय सर्वपापहराय सर्वमालिकेश्वराय ॐ हुँ ॐ ऐं क्लूँ फट् इत्यनेन चन्दनकुङ्कुमगोरोचनादिभिर्घर्षयेत्।

तत्त्वाज्ञैर्न तु नेतव्यो वामदेवस्तु वैदिकः।
कुलाचारविहीनानां न वेदाः फलदायकाः॥१८७॥

अथवा जैसे भी ग्रन्थि दृढ़ हो उस प्रकार की ग्रन्थि करें। ग्रन्थि को दृढ़ सूत्र रज्जू से संयुक्त करें। यही पुण्यमयी माला है तथा सभी सिद्धि प्रदान करती है।

अब शोधनविधि कहते हैं। ९ पीपल के पत्ते को पद्माकार (पाँच गुना) करके मातृका तथा मूलमन्त्रोच्चारण करके उस पर माला स्थापित करें। उसे पञ्चगव्य से क्षालित करके वामदेव मन्त्र पढ़ते-पढ़ते उसका घर्षण हथेली से करें। यह वामदेव मन्त्र है- जैसा महाकुलार्णव तन्त्र में कहा गया है- 'ॐ वामदेवाय सर्वसिद्धीश्वराय' से लेकर 'रोचनादिमिर्घर्षयेत्' यही मूलोक्त मन्त्र वामदेव-मन्त्र है। इस मन्त्रोच्चारण के साथ चन्दन, कुंकुम, गोरोचनादि द्वारा माला का घर्षण करें।

जो तत्व (पंचतत्व) से अनभिज्ञ हैं, वे वैदिक वामदेव न ग्रहण करें। क्योंकि कुलाचार रहित के लिए वैदिक मन्त्र फलद नहीं होते॥ १८५-१८७॥

लज्जा तु सुभगा चैव वाग्भवा काम एव च।
एतेन वीक्षणं कुर्य्यात्तारामन्त्रसुसिद्धये॥१८८॥

ततः शताभिमन्त्रितं मूलेन कुर्य्यात्। तातो मातृकावर्णैः प्रत्येक-बिन्दुं निक्षिपेत् प्रतिमासु मूलेन देवीं तर्पयेत्।

मूलेन स्नापयेन्मालां कुङ्कुमेनापि लेपयेत्।
घर्षयेद्विधिबोधेन कामबीजेन पूजयेत्॥१८९॥
ततश्च मूलमन्त्रं हि मालोपरि शतं जपेत्।
तत्र देवीं प्रतिष्ठोक्तविधिना प्रतिष्ठापयेत्॥१९०॥

लज्जाबीज (ह्रीं), सुन्दर, वाग्भवबीज (ऐं) कामरूप है। तारामन्त्र के सुसिद्धि हेतु 'ॐ ह्रीं ऐं क्लीं' इन मन्त्रों का बीजोच्चारण के साथ विशेष रूप से वीक्षण करना चाहिए।

तत्पश्चात् मूलमन्त्र द्वारा १०० बार अभिमन्त्रित करके मातृकावर्ण द्वारा सभी प्रतिमाओं पर प्रत्येक बिन्दु का निक्षेप करें तथा मूलमन्त्र से देवी का तर्पण करें। तदनन्तर मूलमन्त्र से माला को स्नान कराकर उनका कुंकुम से लेपन करें। तदनन्तर विधिवत् घर्षण करें तथा कामबीज द्वारा पूजा करें॥ १८८-१९०॥

तत आवाहनमुद्राभिरावाहयेत्। ततः षोडशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा पूजयेत्। तत अष्टोत्तरशतं हुनेत् तद्शक्तौ द्विगुणजपः। ततः सप्तप्रदक्षिणं कृत्वा प्राणायामं कृत्वा कराङ्गषडङ्गन्यासौ विन्यस्य मालां शिरसि संवेष्ट्य गोपयेत्।

भुखे मुखन्तु संयोज्य पुच्छे पुच्छं नियोजयेत्।
मुखतः प्रजपेन्मन्त्री पुच्छतो न कदाचन॥१९१॥

पुच्छतः प्रजपित्वा तु शोकदुःखभयादिकम्।
कृताञ्जलिर्यस्य देवी तस्यापि नरकं किल॥१९२॥

तदनन्तर आवाहन मुद्रा से आवाहनोपरान्त षोडश उपचारों से अथवा पञ्चोपचार द्वारा पूजन करके तब १०८ होम करें। यदि इसमें अशक्त हों, तब दूना जप करके सात बार प्रदक्षिणा तथा प्राणायाम करें, षडाङ्ग न्यास अथवा कराङ्गन्यास करे। तदनन्तर माला को मस्तक पर विधानानुसार लपेटें। इसके अनन्तर मुख से मुख को संयोजित करके पुच्छ से पुच्छ नियोजित करें। मुख से जप करें। पुच्छ से कभी भी जप नहीं करना चाहिए। माला के मनकों से मनकों के मुख का सम्मुखीकरण करके जप करें। मनकों के पिछले भाग से जप करें। पुच्छ से जप करने पर लोग दुःख तथा भयादि भोग करते हैं। ऐसा करने वाले के वश में यदि देवी भी हों, तब भी उसे नरक होता है॥ १९१-१९२॥

न सद्गतिर्न वै सिद्धिर्विघ्नस्तस्य सदा भवेत्।
शब्दे जाते भवेद्रोगो धूननं बहुदुःखदम्।
हेलनात् सिद्धिहानिः स्यात्तस्माद् यत्नपरो भवेत्॥१९३॥

उसकी सद्गति नहीं होती। पग-पग पर विघ्न होते हैं। जप के समय शब्द पर रोग भोग करना होगा। कम्पन करने (हिलने से) अनेक क्लेश उपस्थित होते हैं। माला गिर जाने से सिद्धि में विघ्न आता है। इसी कारण साधक को यत्नपरायण होकर जप करना चाहिए। यही है माला का संस्कार॥ १९३॥

इति मालासंस्कारः

अथ होमः प्रकरणम्

प्रागग्रा उदगग्राश्च तिस्रो रेखा विलेखयेत्।
तन्मध्ये च चतुःकोष्ठं लेपं कुर्य्याद्विधानतः॥१९४॥
त्रिकोणमादौ लिख्याथ मध्ये लज्जासमन्वितम्।
वृत्तं ततश्च षट्कोणं कोणवज्रचतुष्टयम्॥१९५॥

अब होम कहते हैं। पूर्व अथवा उत्तर की ओर मुख करके तीन रेखा का अंकन करना होगा इसमें विधानानुसार चार कोष्ठ बनाकर पहले त्रिकोण अंकित करके मध्य में लज्जाबीज (ह्रीं) समन्वित वृत्त, तदनन्तर षट्कोण, कोणों में वज्रचतुष्टय, बाह्यकोण में गजकुम्भ, द्वारदेश में योनिद्वय, अष्टयोनि वाला चक्र तथा गजकुम्भ चतुष्टय सन्निविष्ट करें॥ १९४-१९५॥

गजकुम्भं बाह्यकोणे द्वारे योनिद्वयं द्वयम्।
अष्टयोनियुतं चक्रं गजकुम्भचतुष्टयम्॥१९६॥
एवं कुण्डं स्थण्डिलं वा कृत्वा देवीं विभावयेत्।
अग्नौ प्रपूजयेद्विष्णुमैशान्यां शूलधारिणम्॥१९७॥
वायव्यां चापि ब्रह्माणं नैर्ऋत्यामिन्द्रमेव च।
लक्ष्मीं सरस्वतीं पूर्वे द्वे त्रिकोणे प्रपूजयेत्॥१९८॥
शचीं कृष्णां चोत्तरस्यां छायां गङ्गाञ्च पश्चिमे।
दुर्गां देवीञ्च त्रिपुटां दक्षिणस्यां प्रपूजयेत्॥१९९॥
प्रागग्रेषु यजेद्देवान् मुकुन्देशपुरन्दरान्।
यजेद्वा चोत्तराग्रेषु ब्रह्मवैवस्वतेन्दुकान्॥२००॥
देवीं प्रपूजयेत पश्चात् षट्कोणेषु सदाशिव!।
दुर्गां काञ्चीं तथा कालीं त्रिपुरां भैरवीं तथा॥२०१॥
असितां पूजयेत कोणे तारिणीं मोक्षदायिनीम्।
मध्ये प्रपूजयेद्वत्स! यथाशक्त्युपचारकैः॥२०२॥

इस प्रकार से कुण्ड अथवा स्थण्डिल की रचना करके देवी की भावना करनी होगी। तदनन्तर अग्निकोणों में विष्णु की ईशानकोण में शूलधारी महादेव की, वायुकोण में ब्रह्मा की, नैर्ऋत्य कोण में इन्द्र की, पूर्व दो कोण में लक्ष्मी-सरस्वती की, उत्तर के दो कोण में कृष्ण एवं शची की, पश्चिम में गंगा तथा छाया की, दक्षिण में देवी दुर्गा तथा त्रिपुरा की विशेष रूप से उपचार से पूजा करें। तदनन्तर देवी की योनि की भावना तथा उसकी रजोयुता चिन्तन करें॥ १९६-२०२॥

देव्या योनिं विभाव्याथ भावयेच्च रजोयुताम्।
पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा काष्ठं तत्र निपातयेत्॥२०३॥
ततो वह्निं समानीय कांस्यपात्रे स्थितं शुभम्।
ॐ क्रव्यादेभ्यो हुं फट् स्वाहा इत्यनेन त्यजेद् बुधः॥२०४॥

तदनन्तर तीन बार पुष्पांजलि प्रदान करके कुण्ड में काष्ठ रखें। वह्नि आनयन करें तथा कांस्यापात्रस्थ उस शुभ अग्नि पर 'ॐ क्रव्यादेभ्यो हूं फट् स्वाहा' कहकर क्रव्यादेश छोड़ें॥२०३-२०४॥

पुनर्मूलेन चानीय योनिमध्ये निधापयेत्।
योनिमुद्रां प्रदर्श्याथ मूलं तत्र जपेद्दश॥२०५॥

तत्र देवीं चिन्तयित्वा रजसा योनिमण्डलम्।
गन्धपुष्पेण संपूज्य देवीं सर्वार्थसाधिनीम्॥२०६॥

पुनः अग्नि का आनयन मूलमन्त्र से तथा योनिमध्य में संस्थापन तथा योनिमुद्रा प्रदर्शनपूर्वक उसमें दस बार मूलमन्त्र का जप करें।

तदनन्तर उसमें देवी की चिन्ता करके रजोयुक्त योनिमण्डल का चिन्तन करके गन्धपुष्पों से सर्वार्थसाधिनी देवी की सम्यक् रूपेण पूजा करके 'ॐ चित् पिङ्गल' से लेकर 'सर्वकार्याणि साधय स्वाहा' पढ़कर अग्नि प्रज्वलित करें॥ २०५-२०६॥

ॐ चित् पिङ्गल हन हन पच पच मथ मथ विध्वंसय विध्वंसय मम दुष्टान् पापान् सत्त्वान् शत्रून् ग्रस ग्रस पिब पिब अनेन होमेन सर्वाज्ञां ज्ञापय मम सर्वकार्य्याणि साधय स्वाहा इति पठित्वा वह्निं ध्मापयेत्।

ध्यानम्

रजोगुणसमुदभूतं रक्तवर्णं त्रिलोचनम्।
द्विभुजं सर्वपापघ्नं समिद्धं विश्वतोमुखम्।
नानालङ्कारसंयुक्तं बहुजिह्वासमन्वितम्॥२०७॥

एवं ध्यात्वा अग्ने त्वं वरदनामासि इति नाम कृत्वा वरदनामाग्ने इहागच्छ इह तिष्ठ तिष्ठ मम सर्वकर्माणि साधय स्वाहा। इत्यावाहयेत्। ततो मूलेन नमस्कुर्य्यात्। एवम् आज्यस्यापि श्रुवस्य च। आज्यपात्रस्य दक्षिणभागादाज्यं गृहीत्वा मूलेन अग्नेर्दक्षिणनेत्रे जुहुयात्। तथा वामभागादाज्यं गृहीत्वा वामनेत्रे। मध्यतो मध्यनेत्रे। ततो महाव्याहृतिभिः ॐ भूः स्वाहा। ॐ भुवः स्वाहा। ॐ स्वः स्वाहा। ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा। इति स्त्रीशूद्रयोर्विना। ततो मूलेन एकादशाहुतीर्हुत्वा श्रीतारादेव्याः पीठदेवताभ्यः स्वाहा। ततः अक्षोभ्य ऋषये। ततः काम्यकर्म चेत् सङ्कल्प्य नित्यश्चेन्न तथा। त्रिमध्वन्वितेन प्रकृतहोमं समाप्य स्त्रीशूद्रेतरो महाव्याहृतिभिर्हुत्वा आवरण देवताभ्यः अष्टाहुतीर्हुत्वा वह्निं गन्धपुष्पमाल्यताम्बूलैरभ्यर्च्य श्रीसदाशिवं पूर्वश्रुवाहुतित्रयं दत्त्वा मूलेन पूर्णाहुतिं दत्त्वा वह्निं प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य काम्यदक्षिणादिः। तिलकन्तु मूलेन संहारमुद्रया क्षमस्वेति विसर्जयेत्। इति होमः।

यत्रास्ते कमला कृताञ्जलिपरा वीणाधरा सारदा
तारावाक्यमनुस्मरन् प्रियतमं वामावचः कारणम्।
ब्रह्मानन्दकृतौ सुसाधनविधौ ताररहस्ये शुभे
दीक्षाद्यः पटलो द्वितीयं इति संसिद्धिप्रदः सत्त्वरम्॥२०८॥

अब ध्यान कहते हैं-"अग्नि रजोगुण से समुद्भूत, रक्तवर्ण, त्रिलोचन, द्विभुज, सर्वपापघ्न, समिद्ध, विश्वमुख, विविध अलंकारभूषित, बहुजिह्व समन्वित है।" इस प्रकार से ध्यान करना चाहिए।

'हे अग्ने! आप वरदनामा हैं।' यह कहकर अग्नि का नामकरण करके उनका आह्वान यह मन्त्र कहकर करें-'हे वरदायक अग्नि! यहाँ आगमन करिये।' तदनन्तर आचमन करें। तब 'यहाँ स्थित होइये, स्थित होइये। मेरे समस्त कार्य का निष्पादन करिये। यह उच्चारण करके उनका आह्वान करना चाहिए।'

तत्पश्चात् मूलमन्त्र से अग्नि को प्रणाम करके घृत तथा उत्तम स्रुव का भी आवाहनादि साधन के पश्चात् घृत ग्रहणोपरान्त मूल मन्त्र से अग्नि के दक्षिण नेत्र से हवन करें। तत्पश्चात् वाम भाग में भी (घृतपात्र से) घृत लेकर अग्नि के वाम नेत्र में तथा घृतपात्र के मध्य से घृत लेकर अग्नि के मध्यनेत्र में हवन करें।

तत्पश्चात् ॐभूः स्वाहा॥ ॐ भुवः स्वाहा। ॐ स्वः स्वाहा। ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा। इन मन्त्रों से महाव्याहृति होम करें। स्त्री तथा शूद्रगण हेतु महा व्याहृति होम निषिद्ध है। तदनन्तर मूलमन्त्र द्वारा ११ आहुति प्रदान करके' श्री तारादेव्याः पीठदेवताभ्यः स्वाहा' मन्त्र से पीठदेवतागण के लिए आहुति प्रदानोपरान्त 'स्वाहा' मन्त्र का उच्चारण 'अक्षोभ्य त्रषेय स्वाहा' मन्त्र का उच्चारण करके आहुति प्रदान करे।

तदनन्तर काम्य कर्म होने पर संकल्प करके तथा नित्यकर्म हेतु बिना संकल्प होम करना होगा। त्रिमधुयुक्त होम द्रव्य से होम, आवरणदेवतार्थ अष्ट आहुति दान, गन्ध-पुष्प माला-ताम्बूल द्वारा अग्नि की अर्चना करके पूर्व स्रुव से श्रीसदाशिव को आहुतित्रय प्रदान, मूलमन्त्र से पूर्णाहुति प्रदान तथा वह्नि की प्रदक्षिणा करके प्रणाम करें। काम्यकर्म की स्थिति में दक्षिणादि प्रदान करें। तदनन्तर मूलमन्त्र से तिलक लगाकर संहारमुद्रा प्रदर्शन करके 'क्षमस्व' मन्त्र से 'क्षमा करो' कहकर अग्नि का विसर्जन करें। यही होम है।

जिसके पास स्वयं कमला कृताजंलि बद्ध होकर खड़ी रहती हैं, सारतत्व प्रदातृ सरस्वती वीणापाणिनी होकर सेवा करती हैं, उन तारादेवी के स्मरण मननपूर्वक उनके तदनुवर्त्ती होकर उनके अनुयायी भाव से कार्य करके ब्रह्मानन्द गिरि ने परमवाक्य सम्पदा प्राप्त किया है॥ २०७-२०८॥

॥ ब्रह्मानन्दगिरि कृत सुसाधन विधियुक्त तारारहस्य में शुभ तथा सुसिद्धिप्रद दीक्षादि विधियुक्त द्वितीय पटल पूर्ण॥

॥ द्वितीय पटल पूर्ण॥

तृतीयः पटलः

१- अथ मन्त्रविस्मरणप्रायिश्चत्तम्

तारानिगमे तारार्णवे च। अन्यासां व्यवस्थाऽप्यत्रैव-

कालीतारासु विद्यासु यदि स्यान्मन्त्रविभ्रमः।
तारापूजां ततः कृत्वा चैकलिङ्गे शिवालये॥१॥
कुशासनस्थितो वीरो जपेत् पद्मावतीमनुम्।
एकादशसहस्राणि ततो मन्त्रस्मृतिर्भवेत्॥२॥

अब मन्त्र का विस्मरण होने पर जो प्रायश्चित्त करना पड़ता है, वह कहता हूँ। तारानिगम तथा तारार्णव में इसका विस्तृत वर्णन है। अन्य देवीगण के मन्त्रविस्मरण के प्रायश्चित्त व्यवस्था अन्यायन्य तन्त्रों में निर्दिष्ट है।

काली तथा तारा विद्या के मन्त्र के विस्मृत हो जाने पर एकलिंग मन्दिर में कुशासनासीन होकर उनका पूजन करके पद्मावती मन्त्र जप करें। ग्यारह हजार बार जप करने पर मन्त्र स्मरण में आ जाता है॥ १-२॥

कालीतारासु विद्यासु चक्रचिन्ता न विद्यते।
अरिदोषादिदोषाद्यैर्न लोको लिप्यते क्वचित्॥३॥
यदि भाग्यवशाद्देवि! तारामन्त्रं प्रलभ्यते।
ऋणधन्यादिकं चक्रं न च तत्र परीक्षयेत्॥४॥
ताराविद्या चक्रमध्ये न कदाचिद्धनी भवेत्।
महाचीनक्रमं प्राप्य सर्वस्यैव ऋणी भवेत्॥५॥
तस्माद्देव्याश्च तारायाः प्राणान्तेऽपि च साधकः।
साधने पूजने वापि महाचीनं त्यजेन्न च॥६॥

काली तथा तारामन्त्र में चक्रचिन्तन विधान नहीं है। अरि दोषादि से भी किसी स्थल पर उपासक के लिप्त होने की संभावना नहीं है।

हे देवि! यदि भाग्यवशात् तारामन्त्र की प्राप्ति हो जाये तब उसमें ऋणी-धनी आदि चक्र परीक्षा नहीं करनी चाहिए। ताराविद्या चक्रमध्य में पठित होने से कभी धनी नहीं होतीं (ऋणी-धनी परीक्षण नहीं होता)। महाचीन क्रम द्वारा प्राप्त होने पर ताराविद्या सबकी ऋणी हो जाती हैं।

इसी कारण तारादेवी के साधन तथा पूजन में साधक का प्राणान्तर भले ही हो जाये लेकिन महाचीन क्रम का त्याग न करे॥ ३-६॥

महाचीनं महानीलं न साधयति यो नरः।
न तस्य साधने शक्तिः कुम्भीपाके महीयते॥७॥
वामाचारं परित्यज्य पूजनं वा जपं चरेत्।
स गच्छेन्नरकं घोरं यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥८॥
वामाचारं विना देवि! तारायाः परिपूजनम्।
शोकाय मरणायेह परे च नरकाय च॥९॥

जो व्यक्ति महाचीन तथा महानील साधन नहीं करता, उसके साधन में शक्ति नहीं होती। उसको कुम्भीपाक नरक में निवास करना पड़ता है।

वामाचार त्याग करके जो जप अथवा पूजा करते हैं, वह चतुर्दश इन्द्र के शासन कालपर्यन्त घोर नरक में वास करता है।

हे देवि! वामाचार के बिना देवी तारा की पूजा भले ही कितने ही विशेष रूप से की जाय, वह व्यक्ति नरक, शोक तथा दुःख प्राप्त करता है॥ ७-९॥

न पूजा न जपो यस्य न सन्ध्या न च तर्पणम्।
महाचीनक्रमं कृत्वा स गच्छेत्तारकापदम्॥१०॥
पञ्चतत्त्वं विना देवि! ब्राह्मणः शूद्रतामियात्।
पञ्चतत्त्वयुतो देवि! शूद्रोऽपि विप्रतां व्रजेत्॥११॥
ब्राह्मणः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैवान्त्यजास्तथा।
महाचीनक्रमं कृत्वा शिवः साक्षाद्भवेत् स्वयम्॥१२॥
कौलं दृष्ट्वा यदा कौलस्तस्य पूजां न कारयेत्।
चक्रे स्थित्वाऽथवा मन्त्री लतायोगं समाचरेत्॥१३॥
मध्ये चक्रे स्थितः कौलः शक्तिभ्यः साधकाय च।
दातुं नैव मनश्चक्रे स्वयं नेतुं प्रवर्त्तते॥१४॥
अथवा दिवसं प्राप्य कुलपूजां चरेन्न च।
साधकानपि शक्तिश्च स्वेच्छाचारैर्न तोषयेत्॥१५॥

प्रसन्नमनसा वापि सत्कौलाय प्रदीयते।
स्वयं स्वीयकुलैः सार्द्धं क्रियते च कुलक्रिया॥१६॥
तस्य यन्त्रश्च माला पूजापद्धतिरेव च।
धारितं कवचं तस्य ह्रीयते योगिनीगणैः॥१७॥

जिसके द्वारा पूजा, जप, संध्या तर्पण नहीं किया गया है। वह एकमात्र महाचीन क्रम के विधान से देवी तारा का पद प्राप्त करता है।

हे देवि! पञ्चतत्त्व (पंचमकार) के बिना साधन करने वाला ब्राह्मण शूद्र हो जाता है। पंचतत्त्व युक्त शूद्र भी ब्राह्मण है।

अधिक क्या कहा जाय! ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र तथा अन्त्यजगण भी महाचीनक्रम विधान द्वारा स्वयं साक्षात् शिव हो जाते हैं।

कौल को देखकर यदि कौल उसकी पूजा (स्वागतादि) नहीं करता, अथवा यदि साधक चक्र में रहकर लता (कुलस्त्री) के साथ योगानुष्ठान में प्रवृत्त होता है, अथवा यदि कौलचक्र में अवस्थित होकर शक्तिगण को तथा साधकों को तत्त्वदान (मद्यदान) नहीं करता और स्वयं ग्रहण कर लेता है, अथवा विहित दिवस में कुलपूजन में प्रवृत्त नहीं होता, अथवा स्वेच्छाचार के साथ वह शक्तिगण को संतुष्ट नहीं करता, अथवा प्रसन्नचित्त से सबको (पंचतत्त्व) प्रदान करने में पराङ्मुख हो जाता है, अथवा यदि वह स्वयं अपने कुलवर्ण के साथ कुलक्रिया का अनुष्ठान करता है, तब योगिनीगण उसके यन्त्र-माला-पुष्पपद्धति तथा धारण करने वाले कवच (यन्त्र) आदि को हर लेती है॥ १०-१७॥

वह्निना दह्यते वापि जले वापि प्रलीयते।
चौरैर्वा नीयते किञ्चित् किञ्चिद्वा योगिनीगणैः॥१८॥
एवञ्चेज्जायते वत्स! यन्त्रादिहरणं शिव!।
पञ्च कौलान् समानीय कुमारीञ्च विशेषतः॥१९॥
गन्धाक्षतैश्च संपूज्य वन्देयच्छिरसा नतः।
होमं कुर्य्यात् सहस्त्रन्तु चक्रमध्ये सुसाधकः॥२०॥
अष्टोत्तरशतं कुर्य्यात्तर्पणं साधकोत्तमः।
दग्धमीनास्रवेनापि सर्वदोषैर्न लिप्यते॥२१॥
यन्त्रादिनाशे चैतत्तु प्रायश्चित्तं शिवोक्तितः।
प्रजपेद् वर्णमालाभिरष्टोत्तरशतं मतम्॥२२॥

अथवा सब अग्निदग्ध हो जाता है, किंवा जल में प्रलीन हो जाता है अथवा चोर उसका हरण कर लेता है।

यदि इस प्रकार से यन्त्रादि हर लिये जायें तब पाँच कौलगण को अथवा एक कुमारी को घर लाकर गन्ध, अक्षत द्वारा विशेष पूजा करके नत होकर मस्तक से वन्दना करनी चाहिए। तदनन्तर चक्र में १००० होम करने के उपरान्त १०८ तर्पण करें।

स्वयं शिव ने यन्त्रादि के निर्माण में इस प्रकार के प्रायश्चित्त को कहा है। तब उस समय वर्णमाला द्वारा १०८ बार जप करना चाहिए॥ १८-२२॥

॥ प्रायश्चित्त नामक प्रथम प्रकरण पूर्ण॥

२- अथ पञ्चतत्त्वसंस्कारः

लाक्षारुणगृहे वापि कामाख्यावदने जनः।
सर्वं शृङ्गारवेशञ्च कुर्य्यात् साधकसत्तमः॥२३॥
सिन्दूरं कुङ्कुमं वापि धारणं कुलचन्दनम्।
वामभागकृता शक्तिः सर्वाभरणशोभना॥२४॥
गन्धपुष्पाक्षतैस्तान्तु पूजयित्वा तु साधकः।
षट्कोणं बिन्दुसंयुक्तं वृत्तञ्चापि त्रिकोणकम्॥२५॥
पुनर्वृत्तं चतुष्कोणं कुङ्कुमेन विलेखयेत्।
रक्तचन्दनसंलिप्तं रक्तवस्त्रेण वेष्टयेत्॥२६॥
मूलमन्त्रेण संवीक्ष्य योनिमुद्रां प्रदर्शयेत्।
देवतां भावयेत्तत्र परमानन्दरूपिणीम्॥२७॥

लाक्षारूप गृह में अथवा कामाख्या में सर्वप्रकार के शृंगार को करके सिन्दूर-कुंकुम तथा कुलचन्दन धारण करें तथा सर्वशोभना शक्ति को अपने वामभाग में बैठाकर गन्ध-पुष्प-अक्षत से पूजा करके षट्कोण बिन्दुयुक्त वृत्त-त्रिकोण तथा पुनः चतुष्कोण एवं वृत्त को कुंकुम से अंकित करके उसका रक्तचन्दन विलेपन करें। (शक्ति को रक्तचन्दन लगायें)। उसे लालवस्त्र से वेष्टित करके मूलमन्त्र पाठ, योनिमुद्रा प्रदर्शन करें तथा शक्ति में ही परमानन्दरूपा इष्ट देवी की भावना करें। अब पञ्चमुद्रा द्वारा कारणाधार (जिसमें कारण [मद्य] रखा हो उसे) प्रणाम करना चाहिए ॥ २३-२७॥

प्रणमेत् पञ्चमुद्राभिः कारणाधारमुत्तमम्।
ह्रीं नमो योनिमुद्रादौ क्षं नमश्च कृताञ्जलौ॥२८॥
ष्लुं नमः कुलमुद्रायां ग्लौं नमो मत्स्यरूपके।
हौं नमः संपुटाकारे पञ्च मुद्राः समीरिताः॥२९॥

प्रोक्षयेन्मूलमन्त्रेण धूपयेत्तेन कारणम्।
गन्धपुरुषं ततो दत्त्वा प्राणायामं समाचरेत्॥३०॥
ऋष्यादिन्यासं कृत्वा तु कराङ्गञ्च षडङ्गकम्।
वर्णन्यासं ततः कृत्वा पञ्चमुद्राः प्रदर्शयेत्॥३१॥
धेनुं योनिञ्च मत्स्यञ्च शङ्खं खड्गमतः परम्।
हस्तं दत्त्वा ततः पात्रे पठेन्मन्त्रमनुत्तमम्॥३२॥
ॐ एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम्।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां येन ते नाशयाम्यहम्॥३३॥
ॐ सूर्यमण्डलसम्भूते! वरुणालयसम्भवे!।
अमाबीजमयि! देवि! शुक्रशापाद्विमुच्यताम्॥३४॥
ॐ देवानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि।
तेन सत्येन देवेशि! ब्रह्महत्यां व्यपोहतु॥३५॥

तदनन्तर पञ्चतत्त्व संस्कार कहा जाता है। पंचमुद्रा है 'ह्रीं नमः' से योनिमुद्रा। 'क्षं नमः' से अंजलिबद्ध होना। 'ष् लूँ नमः' द्वारा कुलमुद्रा, 'ग्लौं नमः' द्वारा–मत्स्यमुद्रा, 'हौं नमः' द्वारा सम्पुष्टीकरण। तदनन्तर मूलमन्त्र से प्रोक्षण करें तथा इसी मन्त्र से कारण को धूपित करके गन्ध-पुष्प प्रदान करें तथा प्राणायाम कार्य सम्पन्न करें।

तत्पश्चात् ऋष्यादिन्यास, करांग न्यास, षडङ्गन्यास तथा वर्णन्यास करने के अनन्तर धेनुमुद्रा, योनिमुद्रा, मत्स्यमुद्रा, शंखमुद्रा तथा खण्डमुद्रा का प्रदर्शन करें। अब कारण पात्र पर हाथ रखकर मूलोक्त श्लोक ३३ से ३५ तक पढ़ें॥ २८-३५॥

ॐ वां वीं वूं वैं वौं वः ब्रह्मशापद्विमोचितायै सुधादेव्यै नमः। इति दशधा जपेत्।

इसके अनन्तर 'ॐ वां वीं वूं वैं वौं वः ब्रह्मशापाद्विमोचितायै सुधादेव्यै नमः' का २० बार जप करना चाहिए।

ॐ क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः। सुधादेव्याः कृष्णशापं मोचय मोचय अमृतं श्रावय श्रावय स्वाहा इति दशधा जपेत्॥ ॐ छां छीं छूं छैं छौं छः छुरिका भवशोभिनि सर्वपशुजनमनश्चक्षूंषीन्द्रियाणि स्तम्भय स्तम्भय नाशय नाशाय घातय घातय इति त्रिः। ॐ परमस्वामिनि! परमाकाशशून्वाहिनी! चन्द्रसूर्य्याग्निभक्षिणि! पात्रं विश विश स्वाहा। इति त्रिः।

'ॐ क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः। श्रावय श्रावय स्वाहा' का १० जप करके जपान्त में 'ॐ छां छीं छूं छें छौं छः छूरिका भवशोभिनि। सर्वपशुजन मनश्चक्ष्वंषीन्द्रियाणि स्तम्भय स्तम्भय नाशय नाशय घातय घातय' का तीन बार जप करें।

तदनन्तर 'ॐ परमस्वामिनि, परमाकाशशून्य वाहिनि चन्द्रसूर्याग्नि भक्षिणि, पात्रं विश विश स्वाहा' तीन बार जपें।

अथ ध्यानम्

तन्मध्ये भावयेद्देवीममृतानन्दरूपिणीम्।
सूर्य्यकोटिप्रतीकाशां चन्द्रकोटिसुशीलताम्॥३६॥
रक्तवस्त्रपरीधानां सर्वालङ्कारभूषिताम्।
रत्नकेयूराङ्गदाद्यैः शोभितां सर्वरूपिणीम्॥३७॥

तत्पश्चात् तत्त्व (मद्यपात्र में) में भावना करें-'वे अमृतानन्दनन्दिनी सूर्यकोटिसमप्रभ चन्द्रकोटिवत् परमशीतल रूपिणी हैं।' वे रक्तवस्त्र धारिणी सर्वभूषणभूषिता, सर्वरूपा, रत्न-केयूर-अङ्गदादि से अतिशयशोभाविस्तार कारिणी हैं-यह ध्यान करना चाहिए॥ ३६-३७॥

इति ध्यानम्

विधातव्यं सुधामध्ये साधनञ्च सुसाधकैः।
पूजयेद्बिल्वपत्राद्यैरमृतानन्दनन्दिनीम् ॥३८॥
तन्मध्ये भावयेद्देवं भैरवं भैरवीप्रियम्।
अमृतार्णवमध्यस्थं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्॥३९॥
वृषारूढं नीलकण्ठं सर्वाभरणभूषितम्।
अष्टादशभुजैर्युक्तं गदामुषलधारिणम्॥४०॥
खड्गखेटकपट्टीशमुद्गरं शूलदण्डकम्।
पाशाङ्कुशशरं चापं मुद्रां विद्याञ्च मालिकाम्॥४१॥
मृगं कपालं नागञ्च विधृतं सर्वरूपिणम्।
जटामण्डलमध्यस्थं सुधामध्ये विभावयेत्॥४२॥

इस ध्यानधारणा के उपरान्त सुधा (मद्य) में सुसाधकगण साधन विधान करके बिल्वपत्रादि से अमृतानन्दनन्दिनी की पूजा करें तथा उसमें भैरवी के प्रिय भैरव की भावना करें।

इसमें ध्यान इस प्रकार है- 'वे अमृत सागर में विराजिता, पाँच मुखों से शोभिता, लोचनत्रय से दीप्तिमाना हैं। उनका वाहन वृष है। कण्ठ नीलवर्ण है। उनका देह सर्वाभरण भूषित है। उनकी १८ बाहु हैं।

उनके हाथों में गदा-मूसल-खड्ग-खेटक-पट्टिश-मुद्गर-शूल-दण्ड-पाश-अंकुश-शर-धनु-मुद्रा-विद्या-मालिका-मृग-कपाल-नाग हैं।

वे सर्वस्वरूप हैं। वे जटामण्डलमध्यस्थ है। इस प्रकार से सुधा में उनकी भावना करके गन्ध तथा पुष्पादि से उन देवता महेश्वर का पूजन करें॥ ३८-४२॥

सुधामध्ये लिखेद् योनिं योनिमध्ये हली ततः।
तन्मध्ये भावयेद्देवीं तारिणीं सिद्धिदायिनीम्॥४३॥
स्ववामे लेखयेद् विद्वान् बिन्दुयुक्तं मनोहरम्।
त्रिकोणं बाह्यवृत्तञ्च षट्कोणं वृत्तमेव च॥४४॥

ॐ आनन्देश्वराय विद्महे सुधादेव्यै धीमहि तन्नोऽर्द्धनारीश्वरः प्रचोदयात्॥ इति दशधा जपेत्। तदुपरि मूलं एकविंशतिवारं वं इति सुधाबीजं एकविंशतिवारं च जपेत् मूलेन त्रिर्गन्धं गृह्णीयात्।

तदनन्तर "ॐ आनन्देश्वराय विद्महे, सुधादेव्यै च धीमहि तन्नोऽर्द्धनारीश्वरः प्रचोदयात्" का १० बार पाठ करें। इसी पर २१ बार मूलमन्त्र तथा सुधाबीज का २१ जप करना होगा।

इसके पश्चात् मूलमन्त्र से ३ बार गन्धग्रहणोपरान्त सुधा में अंगुली से योनि अंकित करें। योनिमध्य में 'ह' तथा 'ल' का अंकन करके उसमें सिद्धिदातृ देवी तारिणी की भावना करनी चाहिए॥ ४३-४४॥

अष्टकोणं लिखेद्भद्रं मूलेन परिपूज्य च।
श्रीपात्रं तत्र संस्थाप्य सुधां तत्र समानयेत्॥४५॥
स्वल्पपात्रे ततो नीत्वा सुधां किञ्चित् समानयेत्।
पात्रान्तरगृहीतञ्च शुद्धञ्चापि निवेदयेत्॥४६॥

इसके पश्चात् अपने बायें बिन्दु युक्त मनोहर त्रिकोण तथा उसके बहिर्भाग में वृत्त तथा षट्कोण एवं बनायें। तदनन्तर अष्टकोण भी अंकित करके मूलमन्त्र से पूजनोपरान्त उसमें श्रीपात्र स्थापित करके उसमें सुधा सम्यक् भाव से लायें। तदनन्तर उसे (निकाली सुधा को) अन्य पात्र में रखें तथा शुद्धि करें॥ ४५-४६॥

ॐ सर्वपथिकदेवता मम कल्याणं कुर्वन्तु ह्रौं क्षौं स्वाहा॥ इति पठित्वा बृहत्पात्रोपरि त्रिः परिभ्रामयित्वा श्रीपात्रे भ्रामयित्वा विल्वमूले चतुष्पथे नद्यां तडागे वेश्यागारे वा क्षिपेत्। ततस्तत्र देवां समावाह्य स्वकल्पोक्तविधिना परदेवतां संपूज्य सामान्यार्घ्य विशेषार्घ्याद्यैः।

ततो भावयेच्च देवीममृतानन्दनन्दिनीम्।
सदा षोडशवर्षीयां प्रसन्नास्यां त्रिलोचनाम्॥४७॥
रक्ताभरणशोभाढ्यां नानालङ्कारभूषिताम्।
कामदेवेन चोन्मत्तां कन्यकारूपधारिणीम्॥४८॥

सदाशिवमयीं देवीं रत्युल्लासहृदान्विताम्।
महामोदप्रदां देवीं भावयेत् साधकाग्रणीः ॥४९॥

तदनन्तर मूलोक्त 'ॐ सर्वपथिकदेवता' से लेकर 'स्वाहा' पर्यन्त को पढ़ते बृहत् पात्र के ऊपर शुद्धि को तीन बार फेरकर पुनः श्रीपात्र पर घुमाकर विल्व मूल में, चतुष्पथ पर, नदी में, कूप में अथवा वेश्यागृह में उसे निःक्षिप्त करें।

तदनन्तर उसमें देवी का सम्यक् आह्वान करके अपने कल्प को विधानानुसार सामान्यार्घ्य तथा विशेषार्घ्य द्वारा परमदेवता की अर्चना करें। तदनन्तर अमृतानन्दनन्दिनी सुधादेवी की भावना में प्रवृत्त हो जाये।

वे सर्वदा षोडशवर्षीया, प्रसन्नवदना तथा लोचनत्रय भूषिता हैं। वे रक्ताभरण शोभिता, विविध अलंकार विराजिता, कामोन्मत्ता कन्यकारूपी हैं। वे सदाशिवमयी, स्वप्रकाशा, रत्युल्लासा, आनन्दहृदया तथा महामोदप्रदा हैं ॥ ४७-४९ ॥

ततः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा तत्तत्कल्पोक्तन्यासादिकं कृत्वा कुङ्कुम-कर्पूरगन्धचन्दनै-र्नानानन्दजनकपरदेवताया मन्त्रं तत्र श्रावयेत्। द्रव्याणि दापयेत्। ततः कृताञ्जलिः।

ॐ नमस्तस्यै सुधादेव्यै तारकासिद्धिदायिनम्।
मात्रे पुण्यप्रदायै च भुक्तयै मुक्त्यै महेश्वरीम्॥५०॥

इस प्रकार से देवी की भावना करके तदनन्तर पुष्पांजलि प्रदान करके उस विधि (कल्प) में बतायी गई विधि से न्यासादि करके उसमें कुंकुम-गन्ध-चन्दन-कपूर आदि नाना आनन्दजनक द्रव्य प्रदान करें परमदेवता के मन्त्र की भावना करें। तत्पश्चात् द्रव्यदान के साथ कृतांजलि होकर श्लोक ५० को पढ़ें ॥ ५० ॥

भावयित्वा महादेवं कामेश्वरी विशेषतः।
माता कामेश्वरी देवी पिता कामेश्वरश्च सः॥५१॥
द्वयोर्योगं विभाव्याथ पूजयेत् परदेवताम्।
कालिकां तारकां वापि योऽर्चयेत् स नरोत्तमः॥५२॥
महाचीनक्रमेणैव एतदेव हि शोधनम्।
ये च मूढाश्चरन्त्यन्यां तेषां सर्वं वृथा भवेत्॥५३॥

अव देवी कामेश्वरी की भावना सबकी माता के समान तथा कामेश्वर की भवना सवके पिता के समान करके दोनों के परस्परतः संयोग की भावना करके परमदेवता की पूजा करें। जो व्यक्ति उस समय कालिका अथवा तारा की पूजा करता है। वही उत्तम मनुष्य है।

महाचीन क्रमानुरूप ऐसे ही शोधन होता है। जो मोहवशात् अन्य प्रकार का अनुष्ठान करता है, उनका सब कुछ वृथा हो जाता है। यही है तत्वसंस्कार॥ ५१-५३॥

इति तत्वसंस्कारः

३- अथ शक्तिसाधनं तृतीय प्रकरणम्

मांसं तत्र समानीय शोधयेन्मूलमन्त्रतः।
साधयेत् परया भक्त्या मन्त्रमेतत् समुच्चरन्॥५४॥
ॐ तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत् परमं पदम्।
ॐ कोलमांसं महामांसं मांसं छागादिकस्य च।
योषावर्जं सर्वमांसं तारायाः शुद्धिहेतवे॥५५॥
परमानन्ददश्चैव मांसं परमकारणम्।
तारायाश्च प्रियं दव्यं सर्वदोषविवर्जितम्॥५६॥

यह मांस संस्कार है। महाचीन क्रमेण इसी प्रकार शोधन करें। जो मोहवशात् अन्य प्रकार से मांसशोधन तत्पर होते हैं, उनका सब प्रयास व्यर्थ है। यही है तत्व संस्कार।

पहले वहाँ मांस लाकर मूल मन्त्र से शोधन करें। उस समय वक्ष्यमाण मन्त्र का उच्चारण करके परमभक्ति से साधन करे। मांस शुद्धि मन्त्र मूलोक्त 'ॐ कालमांसं' से लगाकर 'हौं क्षौं स्वाहा' तक है। यही है मांसशुद्धि है॥ ५४-५६॥

हौं क्षौं मांसं महामांसं शोधय शोधय ॐ हौं क्षौं स्वाहा॥

इति मांसशुद्धिः

४- मीन शुद्धिः

तथा हिरण्यरूपं च विष्णुरूपिणमण्डजम्।
महाहिवलयं देवं मत्स्यरूपिणमव्ययम्।
महामेहेति विख्यातं मीनं ताराप्रियं सदा॥ ५७॥

अब मीनशुद्धि कहते हैं- मूलोक्त 'अथ हिरण्यरूपञ्च' से लेकर 'मीनं शोधय शोधय स्वाहा' पर्यन्त से मीनशुद्धि करें॥ ५७॥

ॐ ह्रीं क्ललं मौं व्लं सः सः सः इमं मीनं शोधय शोधय स्वाहा॥

इति मीनशुद्धिः

५- मुद्राशुद्धि

योनिमुद्रां ततो बद्ध्वा दृष्ट्वा च योनिमुद्रिकाम्।
पठेदिमं मनुं वत्स! सर्वकर्मसुसिद्धये ॥५८॥
योनिविद्यां महाविद्यां कामाख्यां कामदायिनीम्।
कामसिद्धिप्रदां देवीं कामबीजादिकां पराम् ॥५९॥
ॐ क्लीं कामेश्वरि! महामाये क्लीं कालिकायै नमः।
ॐ योनिविद्यां महाविद्यां चतुर्वर्गप्रदायिनीम्।
कलाकलासु विज्ञानं तारानामतरोर्मते ॥६०॥

ॐ क्षौं व्लुं हौं ह्नः।

योनिविद्ये योनिसिद्धे योनिकारणकारिके!।
कामदाकामदा ज्ञेया तत्त्वमध्ये महामहा ॥६१॥

अब मुद्राशुद्धि कहते हैं। मूलोक्त श्लोक ५८ से लेकर मूलोक्त श्लोक ६१ तक पढ़ कर मुद्रा शुद्धि करें ॥ ५८-६१ ॥

ॐ सौं बाले बाले त्रिपुरसुन्दरि योनिरूपे! मम सर्वसिद्धिं देहि देहि योनिमुद्रां कुरु कुरु स्वाहा। इति मुद्राशुद्धिः।

ततः शक्तिशोधनम्। ॐ ऐं क्लीं त्रिपुरदेवि! सर्वशक्तिके! शिवत्वं देहि देहि ॐ औं इति तस्याः शीर्षे दशधा जप्त्वा तस्या देहे मातृकान्यासं कृत्वा ऋष्यादिन्यासं कराङ्गन्यासौ च विन्यसेत्। मूलं तद्धृदये शतं जपेत्।

इति शक्तिसंस्कारः

६- शक्ति संस्कारः

मूलं चोक्त्वा स्ववामे तु त्रिकोणं विलिखेद् बुधः।
तत्र मध्ये लिखेल्लज्जां कामतत्त्वस्वरूपिणीम् ॥६२॥
तत्र पूजा विधातव्या गन्धपुष्पाक्षतैरपि।
साधकांश्चापि शक्तींश्च प्रणम्य च पुनः पुनः ॥६३॥

अब शक्ति शोधक कहते हैं।

'ॐ ऐं क्लीं त्रिपुरोदरि सर्वशक्ति शवत्वं देहि देहि ओं ॐ' को शिर पर १० बार जपकर शक्ति की देह पर मातृका न्यास करके ऋष्यादिन्यास तथा करांगन्यास करें। देवी के हृदय पर मूलमन्त्र का १०० जप करें। यही शक्ति संस्कार है।

तत्पश्चात् मूलमन्त्र का पाठ करते हुए अपने वामभाग में त्रिकोण बनाकर उसमें कामतत्वस्वरूपा लज्जाबीज (ह्रीं) का अंकन करें।

उसकी गन्ध-पुष्प-अक्षत से पूजा करके साधकों तथा सभी शक्तियों को (जो वहाँ उपस्थित हो) पुनः-पुनः प्रणाम करें॥ ६२-६३॥

लज्जापूर्वं जलं दत्त्वा चाज्ञां नीतत्वा तु साधकात्।
तर्पयामीति चोक्त्वा तु तर्पयस्व समानयन्॥
वामहस्तानामिकयाऽप्यङ्गुष्ठयोगमाश्रयेत्॥६४॥

ह स क्ष म ल व र यूं आनन्दभैरवीं तर्पयामि स्वाहा इति शुद्धयुक्तासवेन ब्रह्मरध्रे त्रिस्तर्पयेत् एवं गुरुं परमगुरुं परापरगुरुं ह स क्ष म ल व र यूं आनन्दभैरवं स्वाहा इति त्रिः। ततो हृदये तद्रूपेण मूलमुचार्य्य भीमामेकजटां परमपददात्रीं तारादेवीं तर्पयामि स्वाहा। एवं सर्वत्र देवीविषये। तथा च तारानिगमे-

तर्पयेत्तु यदा तारां तर्पयेत् कालिकां पराम्।
तर्पयेत् षोडशीं देवीं ह्यन्यथा निष्फला क्रिया॥६५॥
यत्ते काली परा प्रोक्ता सा तारा परिकीर्त्तिता।
सैव श्रीषोडशी देवी महात्रिपुरसुन्दरी॥६६॥
अभेदं भावयेद् यस्तु स एव श्रीसदाशिवः।
अन्यथा भावयेद् यस्तु स मूढोऽभून्महेश्वर!॥६७॥

लज्जाबीज (ह्रीं) का उच्चारण करके जलदान तथा उपस्थित साधकों से आज्ञा लेकर वामहस्त की अनामिका से अंगुष्ठ को सटाकर उससे तर्पण करना चाहिए।

तदनन्तर 'ह स क्ष म ल व र यूं आनंद भैरवी तर्पयामि स्वाहा' मन्त्र से बुद्धियुक्त आसव से ब्रह्मरन्ध्र पर तीन बार तर्पण करके 'ॐ गुरुं परमगुरुं परापरगुरुं परमष्ठिगुरुं ह स क्ष म ल व र यूं आनन्द भैरव स्वाहा से तीन बार गुरुजन का तर्पण करें। तदनन्तर हृदय पर तद्रूप तीन बार मूलमन्त्र का उच्चारण करके 'भीमामेकजटा-परमदात्री तारादेवीं तर्पयामि स्वाहा' कहे। (तर्पण करें)। देवी पूजादि में सर्वत्र इसी प्रकार से करें। तब भी तारानिगम का कथन है कि 'तारा को तर्पण निवेदन करते समय उसी के साथ देवी कालिका तथा देवी षोडशी का भी तर्पण करना होगा।' जो ऐसा नहीं करता उसकी क्रिया पशुरूप हो जाती है।

मैंने तुमसे काली के सम्बन्ध में जो कहा है, वे ही सर्वव्यापक, सर्वलोक प्रकाशिनी सर्वचैतन्यरूपा तारा हैं तथा वे ही षोडशी तथा त्रिपुरसुन्दरी हैं।

जो व्यक्ति इसमें अभेद भावना करता है, वही सदाशिव है। जो भेददृष्टि रखता है वह मूढ़ है॥ ६४-६७॥

स्वर्गे मर्त्ये च पाताले यः पादयुगमाश्रयेत्।
स भवेत् कल्पवृक्षश्च महामोक्षानुकूलकः॥६८॥
यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षो यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः।
श्रीसुन्दरीतर्पणतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥६९॥

स्वर्ग, मर्त्य, पाताल में जो उनके चरणयुगल का आश्रय लेता है वही महामोक्षनुकूलक कल्पपरायण हो जाता है।

जहाँ भोग है वहाँ मोक्ष नहीं है। तथा जहाँ मोक्ष है वहाँ भोग है ही नहीं। किन्तु जो श्रीसुन्दरी के तर्पण (अर्चन) में निरन्तर तत्पर है, उसे भोग-मोक्ष दोनों करतलगत है॥ ६८-६९॥

ततः स्वदक्षिणकरतले त्रिकोणं विलिख्य शुद्धियुक्तासवं त्रिकोणमध्ये संस्थाप्य लज्जाबीजं दशधा जप्त्वा ॐ ह्रीं ह्रौं ह्रां ह्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः। बीजतत्त्वम् अधःकोणस्थपरमतत्त्वेन शोधयामि स्वाहा। इति शुद्धिखण्डं वामहस्ते नीत्वा गृह्णीयात्। वामखण्डं नीत्वा ॐ ह्रीं ह्रौं ह्रां ह्रीं कं खं गं धं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं वामतत्त्वस्थं परमतत्त्वेन शोधयामि स्वाहा। इति पूर्ववत्। ततो दक्षिणखण्डं नीत्वा ॐ ह्रीं ह्रौं ह्रां ह्रीं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं दक्षकोणस्थतत्त्वेन शक्तितत्त्वं शोधयामि स्वाहा। इति पूर्ववत्। ततो मध्यखण्डं नीत्वा ॐ ह्रीं ह्रौं ह्रां ह्रीं लं क्षं मायातत्त्वेन मायातत्त्वं शोधयामि स्वाहा। इति पूर्ववत्। ततश्च साधकेभ्यः शक्तिभ्यश्च पात्रं शुद्धिञ्च दद्यात्। सर्वे यथाविधि कर्म कुर्वन्ति। ततः कुण्डलिनीमुखे पात्रं ग्रहीतव्यम्।

पात्रोपरि जपेन्मन्त्रं सप्तधा साधकोत्तमः।
गुरुं स्मृत्य पिबेन्मद्यं सर्वकामार्थसिद्धिदम्॥७०॥

तत्पश्चात् अपने दाहिने करतल में त्रिकोण बनाकर उसके मध्य शुद्धियुक्त आसव लेकर लज्जा (ह्रीं) बीज दस बार जपने के पश्चात्, मूलोक्त 'ॐ ह्रीं ह्रौं' से लेकर 'शोधयामि स्वाहा' पर्यन्त कहकर बायें हथेली पर शुद्धिखण्ड रखे। तथा १० बार लज्जावीज जपें। तब मूलोक्त 'ॐ ह्रीं ह्रौं ह्रां ह्रीं कं खं गं घं ङं' से लेकर 'शोधयामि स्वाहा' तक कहे।

तदनन्तर अपने दाहिने करतल पर त्रिकोण अंकित करके उस पर शुद्धियुक्त आसव स्थापन करके १० बार लज्जा बीज जपें। तत्पश्चात् मूलोक्त 'ॐ ह्रीं ह्रौं ह्रां ह्रीं दं धं' से लेकर 'शक्तितत्व शोधयामि स्वाहा' पर्यन्त कहें। इसे पूर्वोक्त प्रकार से शोधित करें।

तदनन्तर दाहिने करतल पर मध्यखण्ड लेकर दस बार लज्जाबीज जप कर मूलोक्त 'ॐ ह्रीं ह्रौं ह्रां ह्रीं लं क्षं मायाजत्वेन मायातत्व शोधयामि स्वाहा' कहें। पूर्ववत् शोधन करें। तत्पश्चात् सभी साधकों तथा शक्तिगण को पात्र एवं शुद्धि प्रदान करें। अब सभी कर्मानुष्ठान में प्रवृत्त हो जाएं तथा इसके अनन्तर कुण्डलिनी मुख पर पात्र रखें। तत्पश्चात् पात्र के ऊपर सात बार मन्त्र जपकर जपान्त में गुरु का स्मरण करके सर्वकामनार्थ सिद्धिप्रद मद्यपान करें॥ ७०॥

ततः कुण्डलीनीमुखे मन्त्रपूर्वकं जुहुयात्। प्रथमपात्रं नीत्वा द्वितीयपात्रे शक्त्युच्छिष्टं नीत्वा च पिबेत्। तथा च–

> शक्त्युच्छिष्टं पिबेन्मद्यं वीरोच्छिष्टन्तु चर्वणम्।
> वीरोच्छिष्टात् पृथक् पाने पशुपानं प्रकीर्तितम्॥७१॥

तत्पश्चात् कुण्डलिनी मुख पर मन्त्रोच्चारण के साथ होम करके प्रथमपात्र को ग्रहण करें। द्वितीय पात्र में शक्ति के जूठन को लेकर पान करें। तभी कहते हैं कि शक्ति के जूठे मद्य का पान तथा वीराचारी द्वारा चबाये गए उच्छिष्ट का भक्षण करना चाहिए। वीराचारी के उच्छिष्ट का जो पृथक् पान करता है (अर्थात् उसमें शक्ति के जूठन को नहीं मिलता) वह पशुपान कहलाता है॥ ७१॥

> निन्दा श्रुतिः साधकानां हिंसाज्ञानं कुले यतः।
> निन्दा वा शाक्तकौलानां साधकानां न पूजनम्॥७२॥
> अनिच्छया शक्तियोगं चक्रे वापि च मैथुनम्।
> कामतः शक्तियोगं वा न ध्यानं दैवते न वा॥७३॥

इसमें शक्तिसाधक गण के कुल में हिंसा ज्ञान मानने वाले साधकगण की निन्दा सुनी जाती है। (अर्थात् वे निन्दित हैं)। शक्ति तथा कौलगण की पूजा न करना भी निन्दास्वरूप कृत्य है।

बिना इच्छा चक्र में शक्ति संयोग तथा मिथुन धर्म प्रवृत्त होना अथवा कामासक्त होकर चक्र में शक्तियुक्त होना तथा विधान का ध्यान न रखना। यह सब साधक के लिए निन्दित कार्य है॥ ७२-७३॥

> जपहोमविहीनं यद् भक्तिहीनं कुलार्चनम्।
> प्रकटं साधकानाञ्च असन्तुष्टश्च साधकः॥७४॥
> एवं धर्मयुतः कौलो भ्रष्टः कौलः प्रकीर्त्तितः।
> पञ्चमं पुरतः कृत्वा चतुर्थे जपमाचरेत्।
> जपपूजां विना पानं पशुपानं प्रकीर्त्तितम्॥७५॥

जप-होम बिना किये अथवा शक्तिरहित होकर कुलार्चन करना अथवा साधकों के प्रति असंतुष्टि भाव रखना, यह सब निन्दित कृत्य हैं।

जो कौल साधक ऐसा करता है वह भ्रष्ट कौल साधक है। पुरोभाग में पञ्चम (मद्य) स्थापित करके चतुर्थ भाग में जप करें। जो जप-पूजन के बिना मद्यपान करता है, वह पशुपान करता है॥ ७४-७५॥

शक्तिसंस्कार समाप्त

७- अथ पात्रवन्दनमन्त्राः

श्रीमद्भैरवशेखरप्रविलसच्चन्द्रामृप्लावितं
क्षेत्राधिष्ठितयोगिभिर्जनगणैः सिद्धैः समाराधितम्।
आनन्दार्णवकं महात्मकमिदं साक्षात्त्रिखण्डामृतं
वन्दे श्रीप्रथमं कराम्बुजगतं पात्रं विशुद्धिप्रदम्॥७६॥
हैमं नीलकलान्वितं मुमहिमायोगं महामांसकं
किञ्चिन्नेत्रविचञ्चलं रविवरच्छायाप्रदं शाश्वतम्।
आनन्दादिमहार्णवे विगलितं ज्ञानं महामोक्षदं
वन्दे पात्रमहं द्वितीयमधुना स्वात्मावबोधक्षमम्॥७७॥
महापद्मे करे पद्मे योनिमालोकयन् धिया।
दग्धमीनसमोपेतं वन्दे पात्रं तृतीयकम्॥७८॥
मुद्रारूपां योनिमुद्रां सिद्धिदां सिद्धिरूपिणीम्।
भजामि परया भक्त्या चतुर्थं पारयाम्यहम्॥६९॥
योनिना लिङ्गमाप्नोतं पञ्चमं परिकीर्त्तितम्।
तत्तद्भूतेनामृतेन कल्पयामीह पञ्चमम्॥८०॥

पात्रवन्दन मन्त्र यह है-श्रीमद्भैरव के शिखर देश (मस्तक पर) पर विराजित शशधर से विगलित अमृतधारा से प्लावित सबके लिए शुद्धिप्रद क्षेत्रधिष्ठित योगी तथा सिद्धों से आराधित आनन्दसागररूप साक्षात् त्रिखण्डामृत तथा कर पद्म कर विराजित परम महान् श्रीप्रथम पात्र की वन्दना करता हूँ।

अब आनन्दादि समुद्र से विगलित ज्ञानस्वरूप, महामोक्षप्रद, सुवर्ण निर्मित, नीलकलायुक्त, परम महिमायोगविराजित तथा स्वात्मावबोध सम्पादन में सूर्य किरण के समान क्षमतायुक्त इस द्वितीय पात्र की वन्दना करता हूँ।

अब मन ही मन योनि का चिन्तन करके महापद्म (करपद्म) में शोभित दग्ध मीनयुक्त तृतीय पात्र की वन्दना करता हूँ।

तत्पश्चात् परम भक्ति के साथ चतुर्थ पात्र की अभ्यर्थना करता हूँ। यह पात्र सिद्धिरूपा तथा सिद्धिसम्पादिका योनिमुद्रारूपा है।

यह पंच पात्र योनि द्वारा आप्लुत लिंग रूप है। उस अद्‌भुत अमृत द्वारा इसकी कल्पना करता हूँ॥ ७६-८०॥

सदानन्दप्रदं द्रव्यं महानन्दप्रदायकम्।
गुरुपादगते दाने षष्ठे पात्रं नमाम्यहम्॥८१॥
समुद्रसप्तसम्भूतं समुद्रवारिजं शुभम्।
समुद्रे निगमे प्राप्ते गृह्णामि सप्तमीं सुधाम्॥८२॥
अष्टदुर्गा शक्तिरूपा महिषासुरनाशिनी।
पुनाति सा जगद्धात्री नवमे शङ्करप्रिया॥८३॥
महाविद्या दश प्रोक्ता महासिद्धिप्रदायिनी।
महामोहविनाशञ्च मोहिनी दशमे करे॥८४॥
एकादश महारुद्रा वसुसिद्धिप्रदायकाः।
चतुःषष्टिसिद्धिदांस्तान् वन्दे चैकादशे करे॥८५॥

यह षष्ठपात्र सदानन्द तथा महानप्रद साक्षात् द्रव्यरूप है। गुरुपादपद्म में प्रदान करके प्रणाम करता हूँ।

यह सप्तम सुधा सातों समुद्र से संतभूत है। इसने सागर में जन्म लिया है। इसको ग्रहण करता हूँ।

अष्ट पात्र में साक्षात् महिषामर्दिनी शक्ति दुर्गा हैं। नवम पात्र में वे जगद्धातृरूपेण सबको पवित्र करती हैं।

दशम पात्र में सिद्धिप्रदा महाविद्या हैं। ये महामोह का विनाश करती हैं। इस दशम पात्रस्थ मोहिनी रूपेण स्थित सुरा ग्रहण करता हूँ।

एकादश-पात्र में साक्षात् आठ सिद्धि देने वाले-महारुद्रस्वरूप रुद्रगण हैं। ये ६४ सिद्धियाँ प्रदान करते हैं। इस एकादशवें पात्र में उनकी वन्दना करता हूँ॥ ८१-८५॥

द्वादशे द्वादशादित्याः सदा तर्पणतत्पराः।
वामनेत्रस्वरूपेण द्वादश चन्दयाम्यहम्॥८६॥

द्वादश आदित्य सर्वदा तर्पण तत्पर होकर इस द्वादश पात्र में विराजित रहते हैं। वामनेत्ररूप इस द्वादश पात्र की वन्दना करता हूँ॥ ८६॥

त्रयोदशे महाविद्या शारदा परिभूयते।
वाचां सिद्धिप्रदां देवीं वन्दे पात्रत्रयोदशे॥८७॥

त्रयोदश पात्र में महाविद्या सरस्वती अभिभूता हैं। वे वाक्सिद्धि देती है। उनकी वन्दना करता हूँ॥ ८७॥

इति त्रयोदशपात्रवन्दनं सदा सुखप्रदम्। अन्यद् यत्प्रकारान्तरं पात्रवन्दनं ग्रन्थान्तरे दृश्यते तत् कालीतारासुन्दरीत्रिपुरेतरविषयम्।

यावन्न चलते चक्षुर्यावन्न चलते मनः।
तावत् पानं प्रकर्त्तव्यं मन्त्रसिद्धिप्रदायकम्॥८८॥
पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा पुनः पतति भूतले।
उत्थाय च पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥८९॥

इस प्रकार १३ पात्र की वन्दना करने से सभी सुख मिलता है। ग्रन्थान्तर में जो अन्यविध प्रकारान्तक पात्रों का वर्णन है, वह काली-तारा-त्रिपुरा तथा सुन्दरी विषयक है। जब तक नेत्र तथा मन चंचल न हो जायें तब तक पीते रहें। पीते-पीते सवेरे तब उठकर पुनः पियें। इससे पुनर्जन्म नहीं होता॥ ८८-८९॥

अथ तारानिगमोक्तकेवल-श्रीताराविषये सर्वपात्रवन्दनमन्त्रश्चैकत्रैव-

नाहं कर्त्ता कारयिता न च मे कार्यं, नाहं भोक्ता भोजयिता वा न च भोज्यम्। अहं चिदात्मा स्वयमेव तेजः, स्वयं गुरुविष्णुरहं सरूपः॥

नान्यं स्मरेन्न न भजेत् परिहाय चाद्यां, नान्यां तपो न च गतिः परिहाय चाद्याम्॥

इति पानं सर्वत्र शुद्धियुक्तेन। प्रथमं यथाशक्ति पिबेत्। ततः पञ्चतत्त्वक्रमः।

प्रथमं वामहस्ते त्रिकोणाकारपानमुद्रया द्रव्यं नीत्वा दक्षिणहस्ते शुद्धिं नीत्वा मूलमुच्चार्य्य-इदं शुद्धियुक्तासवं श्रीमत्तारा एकजटामहादेव्यै नमः। सर्वत्र शुद्धिसंस्कारे मूलमन्त्रजपः इति।

ततः वामहस्ते मांसं धृत्वा मूलं सप्तधा जप्त्वा-एषा मांसशुद्धिः श्रीमत्तारा एकजटादेव्यै नमः। ततो मीनं वामहस्ते नीत्वा-एषा मीन-शुद्धिः श्रीमत्तारा एकजटादेव्यै नमः। ततः शक्तिलिङ्गमुद्रां प्रदर्श्य-"एषा शक्तिः श्रीमत्तारा एकजटादेवी महानन्दकल्पनाय रक्ष रक्ष पश्य पश्यः प्रसीद प्रसीद अस्या योनौ मम सिद्धिं देहि देहि ओं ओं ओं स्वाहा" इति निवेद्य यथायोग्यमानन्दं कृत्वा चक्रादितरस्थाने शक्तिं नीत्वा स्वपुरतः पुरोमुखीं संस्थाप्य तदुपरि बिन्दुविनिक्षेपं कृत्वा योनिलिङ्ग मुद्रां प्रदर्श्य अदीक्षितश्चेत् कर्णे लज्जाबीजमुक्त्वा कृताञ्जलिः-

शक्तिरूपे ! महादेवि! योनिसिद्धस्वरूपिणि।
प्रसीद जगतां सृष्टिकारिणी! ब्रह्मरूपिणि!॥९०॥

अब तारानिगमोक्त केवल तारा के विषयक समस्त पात्र वन्दन का मन्त्र प्राप्त होता है।

मैं कर्त्ता, कारयिता नहीं हूँ। मेरा कार्य भी नहीं है। मैं भोक्ता, भोजयिता तथा भोज्य भी नहीं हूँ। मैं हूँ स्वयं चिदात्मा तथा साक्षात् गुरु एवं विष्णु।

मैं सबकी आदि उन तारा के अतिरिक्त न तो अन्य देवता का स्मरण करता हूँ, न भजन ही करता हूँ। उनके बिना न तो मेरी तपस्या है, न गति है।

इस प्रकार के मन्त्रोच्चार द्वारा शुद्धिविधान युक्त पान करें। पहले यथाशक्ति पानोपरान्त तब यथाक्रम पञ्चतत्व में प्रवृत्त हो जायें।

पहले वामहस्त से त्रिकोणाकार पानमुद्रा में द्रव्य लेकर दक्षिण हाथ में शुद्धिधारण करें। तब मूलमन्त्र का उच्चारण करके कहे–'इदं शुद्धियुक्तासवं श्रीमत्तारा एकजटा महादेव्यै नमः।' शुद्धि संस्कार काल में मूलमन्त्र ही जपें। बायें हाथ में मांस धारण करके १०० बार मूलमन्त्र जपें। एषा मांसशुद्धिः श्रीमत्ताराएकजटा देव्यै नमः। तदनन्तर वामहस्त में मीन लेकर कहे 'एषा मांस शुद्धि श्रीमत्तारा एकजटा देव्यै नमः। मम सिद्धिं देहि देहि ॐ ॐ ॐ स्वाहा।'

तदनन्तर शक्तिलिंगमुद्रा प्रदर्शन करके कहे–"एषा शक्तिः श्रीमत्तारा एकजटादेवी महानन्दकल्पनाय रक्ष रक्ष पश्य पश्य प्रसीद प्रसीद अस्या योनौं मम सिद्धिं देहि देहि ॐ ॐ ॐ स्वाहा।" यह कहकर निवेदन करके तथा यथायोग्य आनन्द करके चक्र से शक्ति को अन्य स्थान पर ले जाकर उस पर यह बिन्दु छिड़कें (मद्यबिन्दु) तथा योनिमुद्रा प्रदर्शन करें। यदि शक्ति दीक्षिता न हो, तब उसके कानों में लज्जाबीज (ह्रीं) का उच्चारण करें। तदनन्तर कृतांजलि बद्ध होकर कहें–हे महादेवी! आप शक्ति तथा योगसिद्धिरूपा हैं। आप जगत् सृष्टिकारिणी तथा ब्रह्मरूपा हो। मुझ पर प्रसन्न हो जाओ॥ ९०॥

योनिरूपा महाविद्या योनिसिद्धिप्रदायिनी।
सृष्टिः प्रजायते यस्मात् पुत्रत्वेनापि पाल्यते॥९१॥
पुनः प्रलीयते योनौ सृष्टिस्थितिलयालये।
साधयामि महामन्त्रं तेन सिद्धिं विधेहि मे॥९२॥

आप योनिरूपा महाविद्या हैं। आप योनिसिद्धिप्रदा हैं। योनि से ही सृष्टि उत्पन्न होती हैं। यह योनि ही सब का पुत्ररूपेण पालन करती है।

इस योनि में ही सबका लय होता है। किंबहुना, यह योनि सृष्टि-स्थिति तथा आलय है। मैं महामन्त्र साधन तत्पर हूँ। मुझे सिद्धि प्रदान करिये॥ ९१-९२॥

ॐ ह्रौं ह्रौं क्लीं कामेश्वरि महात्रिपुरे त्रिपुरालये! ममैवं सिद्धिं देहि देहि स्वाहा। इति पठित्वा लिङ्गे शापमन्त्रं सप्तधा जप्त्वा दिगम्बरो भूत्वा तां दिगम्बरीं कृत्वा पद्मं दृष्ट्वा तत्र बिम्बं रविविम्बं चामरं सफरीञ्चापि शिखरं तथा नाभौ शतं जपेत्।

योनिमध्ये शतं जप्त्वा प्रवेशं कारयेद् बुधः।
महायोनिमयीं देवीं पार्वतीं परिभावयेत्॥९३॥

तब योनि पर 'ॐ ह्रौं ह्रौं क्लीं कामेश्वरी महात्रिपुरे त्रिपुरालये ममैव सिद्धिं देहि देहि स्वाहा' पढ़कर लिंग पर सात बार शापमन्त्र जपें। तब स्वयं दिगम्बर होकर तथा शक्ति को दिगम्बरी करके पद्म, विल्व, रविबिम्ब, चामर, शफरी तथा शिखर दर्शन करके नाभि पर १०० बार (शक्ति की नाभि पर) १०० बार जप करें।

तब योनि में १०० बार जपोपरान्त उसमें मेढ का प्रवेश करके महायोनिरूपा देवी पार्वती की परिभावना में लगें॥ ९३॥

स्वयं शिवस्वरूपः स्यादात्मानं शिवरूपिणम्।
भावयित्वा निर्विकारं स्वयभाढ्यं विघातयेत्॥९४॥
साधको भावयेद् यस्तु कामुको वा प्रजायते।
पच्यते नरके घोरे न मोक्षः कोटिजन्मतः॥९५॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन निर्विकारो भवेत् स्वयम्।
अन्यथा सिद्धिहानिः स्यात् पतते नरके स्वयम्॥९६॥
ओं नाभिचैतन्यरूपाग्नौ हविषा मनसा स्रुचा।
ज्ञानं प्रदीप्यते नित्यमक्षवृत्तिर्जुहोम्यहम्॥९७॥
ओं धर्माधर्महरैर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा स्रुचा।
सुषुम्नावर्त्तना नित्यमक्षवृत्तिर्जुहोम्यहम्॥९८॥

इति त्यजेत्।

ततस्तत्रासने स्थित्वा सहस्रं जपेत्। ततः पात्रं प्रक्षाल्य ऊर्ध्वे च जले मायाबीजं विलिख्य तत्रस्थेन मृदा-

ओं यं यं स्पृशामि पादेन यो मां पश्यति चक्षुषा।
स एव दासतां याति यदि शक्रसमो भवेत्॥९९॥

इति ललाटे टीकां नीत्वा विहरेत्। द्रव्यं वारणाक्षितोलकमितं पात्रे सदावेशयेत्।

साधकेभ्यश्च शक्तिभ्यो दत्त्वा पात्रं समानयेत्।
साधयेत् त्रिविधैर्भावैर्दिव्यवीरपशुक्रमैः ॥१००॥

स्वयं शिवस्वरूप होकर आत्मा में शिवस्वरूप की भावना करें। तभी सर्व प्रकार विकार से रहित होकर ऐसा ही करना चाहिए।

जो कुछ कामुक होकर ऐसा अनुष्ठान करता है। वह नरक में जाता है। तदनन्तर श्लोक ९७-९८ को पढ़ते हुए वीर्य त्याग करें। तदनन्तर उसी स्थान पर आसनासीन हरते १००० जप सम्पन्न करके पात्र प्रक्षालनोपरान्त तथा ऊर्ध्व में तथा जल में मायाबीज (ह्रीं) लिखकर वहाँ मृत्तिका द्वारा श्लोक ९९ पढ़ते हुए उस मिट्टी से ललाट पर टीका करके आनन्दपूर्वक विचरण करें।

पात्र में २८ तोला माप का द्रव्य रखकर सभी साधक तथा शक्ति गण को प्रदान करके पात्र समानयन करें। दिव्य वीर तथा पशु इस त्रिविधक्रम से साधना करें॥ ९४-१००॥

दिव्यास्तु देववत् प्रायः सदाचारपरायणाः।
ऋणाधानं तथा पाठ्यं हिंसाञ्चैव विशेषतः ॥१०१॥
स्नानं सन्ध्याञ्च पूजाञ्च दिवा कुर्यात् त्रयं त्रयम्।
पुरस्त्रीमाहरेद्वोध्याऽपरं पुत्रवदिष्यते।
सदा सत्त्वगुणं स्मृत्वा ब्रह्मचारी भवेद् ध्रुवम्॥१०२॥

दिव्यभाव वाले प्रायः देवगण के समान सदाचार होते हैं। वे ऋणाधान, शाठ्य हिंसा का त्याग करते हैं।

इस कारण दिव्यसाधक दिव्यभाग से तीन-बार स्नान, संध्या तथा पूजा करते हैं परस्त्री को माता मानते हैं। पराये लोग को पुत्रवत् मानकर सदा सत्वगुण वाले तथ ब्रह्मचारी होकर रहते हैं॥ १०१-१०२॥

योषावक्त्रं कुचौ वापि ऊरुञ्च साधकोत्तमः।
दृष्ट्वा मन्त्रं जपेल्लक्षं द्वादशस्वर्णमुत्सृजेत्॥१०३॥
तर्पयेत् सुधया देवीं तारां तारकदायिनीम्।
साक्षादिन्द्रो भवेत् सोऽपि यदि योषां न च स्पृशेत्॥१०४॥
योषास्पर्शमात्रेणः दिव्यभावो वृथा भवेत्।
यावत्तपस्या कर्त्तव्या तावद् योषां विवर्जयेत्॥१०५॥
मत्स्यं मासं तथा तैलं स्निग्धान्नं मोदकं तथा।
स्त्रीशूद्रौ नैव द्रष्टव्यौ चान्यथा पतनं भवेत्॥१०६॥

शक्ति के मुख, उस तथा कुचों को देखते १२ लाख जप करें तथा स्वर्णदान करे। तारकदात्री देवी तारा को सुधा से तर्पित करें। यदि स्त्री का स्पर्श नहीं करता, तब वह व्यक्ति साक्षात् इन्द्रवत् हो जाता है।

स्त्रीगण का स्पर्श करते ही दिव्यभाव नष्ट हो जाता है। वह जब तक तप करता है, तब तक उसे स्त्रीगण के संसर्ग में नहीं रहना चाहिए।

मत्स्य, मांस, तैल, सिद्धान्न, मोदक वर्जित करें। स्त्री तथा शूद्रों का अवलोकन न करे। करने से पतन होगा॥ १०३-१०६॥

जाते सिद्धे च तपसि ऋतुकाले व्रजेत् स्त्रियम्।
पञ्चपर्व वर्जयित्वा न चेद् भ्रष्टो भविष्यति॥१०७॥

अत्रायं संक्षेपः भावसारावल्यां व्याख्यातो वीराचारोऽपि संक्षेपतः कामाख्यामूले व्याख्यातः पश्वाचारस्तु-

चितीं वा कामिनीं वापि शवं वा न च साधयेत्।
कालीतारासु विद्यासु नैवान्तर्यजनञ्चरेत्॥१०८॥

भावसारावली ग्रन्थ में दिव्यभाव का संक्षिप्त वर्णन है तथा कामाख्या मूल ग्रन्थ में पश्वाचार का संक्षेप में वर्णन है। तपः सिद्धि हो जाने पर ऋतुकाल में दिव्यगण स्त्री संसर्ग करें लेकिन पंच पर्व का वर्जन करे। पंच पर्व हैं अष्टमी-चतुर्दशी-पूर्णिमा-अमावस्या तथा संक्रान्ति।

चितिं-कामिनी अथवा शवसाधना न करें। काली तारा आदि दशमहाविद्या में अन्तर्यजन न करें॥ १०७-१०८॥

पीठस्थानं भावयेन्न परयोषां न दर्शयेत्।
वीरभावकुलो दिव्यस्तस्माद्दिव्यं प्रशस्ते॥१०९॥
अशक्तत्वाद् भवेद् वीरो न पशुश्च कलौ क्वचित्।
येन तेन प्रकारेण पशुभावं विवर्जयेत्॥
स्वेच्छा यद्भक्षणे चास्ति का सिद्धिस्तेन भारते॥११०॥

पीठस्थान भावना न करें। परस्त्रीदर्शन न करें। दिव्यभाव वीरभाव का कुलस्वरूप है। तभी दिव्यभाव प्रशस्त है।

जो दिव्यभाव में अशक्त हो वह वीरभाव का अवलम्बन करें। कलि में पशुभाव नहीं होता। इसलिए जिस किसी प्रकार से पशुभाव का वर्जन करें। यथेष्ट-भक्षण करने पर उससे सिद्धिलाभ कैसे होगा? ॥ १०९-११०॥

अथ तारानिगमोक्तश्लोकमेकं शान्तिस्तोत्रम्-

ॐ पाहि त्वं करुणामयि! प्रियतमं सत्साधकं रक्ष मां
भ्रष्टान्नाशय नाशय प्रियतमं वक्त्रारविन्दं मम।
नित्यं देहि सुधासुधाचयमयीं सिद्धिं शिवे! सिद्धिदाम्।
ज्ञानं मोक्षविधायकं कुरु शिवे! संहारिणी! पाशवे॥१११॥

अब तारानिगमोक्त शान्तिस्तोत्र का एक श्लोक लिखा जा रहा है-'हे करुणामयी! तुम मेरा पालन करो। साधकों का प्रतिपालन करो। जो भ्रष्ट हैं, उनका नाश करो। विनाश करो। जिससे साधुजन सुधायुक्त विराजित हो जायें, वह सिद्धि प्रदान करो। जिससे सिद्धि तथा मोक्ष विहित हो जाये, वह ज्ञान प्रदान करो तथा पशुओं का संहार करो॥ १११॥

शान्तिस्तोत्रं पठित्वा तु यथेच्छं विहरेन्नरः।
चक्रमध्ये भवेद् या सा वक्तव्या न च कुत्रचित्॥११२॥
कथा प्रातर्भवेत् सापि नाशाय नरकाय च।
चक्राकारं चरेच्चक्रं पंक्त्याकारमथापि वा॥११३॥
प्रविष्टे भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजोत्तमाः।
निवृत्ते भैरवीचक्रे तथा सर्वे पृथक् पृथक्॥११४॥

इस प्रकार से शान्ति स्तोत्र पाठ करके यथेच्छ विचरण करें। चक्र में जो भी घटित हो, वह किसी से न कहें। कहने से वह नरक में पतित होता है। चक्र को चक्राकार अथवा पंक्त्याकृति बनायें।

भैवरी चक्र में प्रवृत्त होने पर सभी वर्ण वाले द्विजश्रेष्ठ हो जाते हैं। भैरवी चक्र से निवृत्त होन पर सभी वर्ण पुनः पृथक्-पृथक् हो जाते हैं॥ ११२-११४॥

गन्तुं चक्रात् समायातं नत्वा नत्वा पुनः पुनः।
अन्यथा मरणं तस्य गतिः स्याद् यमसादने॥११५॥
अन्यचक्रञ्च दूरस्थं स्वचक्रं वा सकृद् व्रजन्।
स भवेत्तारकापुत्रो वसुसिद्धीश्वरो भवेत्॥११६॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
लक्षं वापि तडागानां चक्रं दृष्ट्वा लभेत् फलम्॥११७॥
यो ददाति महादेव! शक्तिभ्यः साधकाय च।
कलामात्रेण देवेषु कोट्यश्वमेधजं फलम्॥११८॥

चक्र में समागत अथवा उसमें गमनोद्यत व्यक्ति को पुनः-पुनः प्रणाम करें। जो ऐसा नहीं करता वह मृत्यु तथा नरक को प्राप्त करता है। अपने चक्र का तथा अन्य के चक्र का दूरस्थित होने पर भी एक-एक बार अवश्य दर्शन करना चाहिए। दर्शन द्वारा उसे देवी पुत्र तथा अष्टविध सिद्धि का अधीश्वर बना देती है॥ चक्रदर्शन में हजारों-हजार अश्वमेध सैकड़ों वाजपेय तथा लाखोंलाख तालाब खनन का फल मिलता है॥ ११५-११८॥

उपवासं भृगोः पातं सन्ध्या सव्रतधारणम्।
तीर्थपर्य्यटनञ्चैव कौलः पञ्च विवर्जयेत्॥११९॥
महापीठं व्रजेन्नित्यं न चेत् पीठमनुत्तमम्।
तारापुरं महापीठं गन्तव्यं यत्नतः सदा॥
लक्षत्रयजपाद्देवि! सर्वसिद्धिश्वरो भवेत्॥१२०॥
ईशाने चक्रनाथस्य वैद्यनाथस्य पूर्वतः।
तारापुरमिदं ख्यातं नगरं भुवि दुर्लभम्।
तत्र यत्नेन गन्तव्यं यत्र ताराशिवालयम्॥१२१॥

उपवास, शुक्रपात, संध्या, व्रतानुष्ठान, तीर्थपर्यटन-इन ५ कार्यों का वर्जन कौल साधक को करना चाहिए।

कौलसाधक नित्य महापीठ पर जायें। यदि यह न हो सके तब उन्हें किसी उत्तम पीठ स्थान पर जाना चाहिए। यह यत्नतः महापीठ तारापुर जायें। हे देवि! वह तीन लाख जप करने से सर्व प्रकार भी सिद्धि का अधीश्वर हो जाते हैं।

चक्रनाथ के ईशानकोण में तथा वैद्यनाथ के पूर्व में तारापुर नामक महापीठ स्थित है। अतः वहाँ यत्नतः जायें। वहाँ जाकर अभीष्ट प्राप्ति हेतु अनुरागपूर्वक प्रयत्न करें। संक्षेप में मैंने तत्वादि रहस्य कहा॥ ११९-१२१॥

॥ तृतीयपटल का तत्वसिद्धरहस्य समाप्त॥

इति संक्षेपः

इति श्रीब्रह्मानन्दपरमहंसपरिव्राजकावधूतविरचिते
तारारहस्ये तृतीयपटले तत्त्वादिरहस्यम्।

अथपूजा-प्रकरणम्

अथ पूजा। तथाच तारागिनमे तारासारे च-

आदौ जलञ्च संशोध्य क्षालनं हस्तपादयोः।
मूलेन तिलकं कुर्य्याद् विभूत्या तु त्रिपुण्ड्रकम्॥
रक्तचन्दनटीकां वा सिन्दूरस्यापि वा पुनः॥१२२॥

ततः पीठं चिन्तयेच्च कृताञ्जलिपरो भवेत्।
आचमनं ततः कृत्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।
वैरोचनादीन् विन्यस्य भूमि संशोधयेत्ततः ॥१२३॥

अब पूजा प्रणाली कहते हैं। तारानिगम तथा तारासार में कहा है कि पहले जलशोधन करके हस्ता-पाद प्रक्षालन, रक्त चन्दन अथवा सिन्दूर का तिलक लगायें।

मूलमन्त्र से विभूति द्वारा तिलक तथा त्रिपुण्ड्र का अंकन करके 'ॐ मणिधारि वज्रिणी सर्वशंकरी हूं फट् स्वाहा' कहकर आचमन करें। पहले गुरु पूजागृह के द्वार पर आयें तथा 'ॐ वज्रोदके हूं फट् स्वाहा' मन्त्र प्रभाव से आविर्भाव तथा सन्निधान करके, 'ॐ विशुद्ध धर्मगायत्रि सर्वपापानि शमयोराषविकल्प 'यनीयं हुँ फट् स्वाहा।' से हाथ-पैर का प्रक्षालन करें। तदनन्तर मूलमन्त्र से तिलक तथा त्रिपुण्ड्र धारण करें और गोरोचन तथा सिन्दूर से टीका लगाकर 'ॐ मणिधरि वज्रिणी सर्ववशङ्करी हुँ फट् स्वाहा' से शिखा बन्धन करके 'ऊं ह्रीं स्वाहा' कहकर आचमन करके कृतांजलि होकर पीठ का चिन्तन करें। तदनन्तर आचमन करके वह सिद्धि का अधिनायक हो जाये और वैरोचनादि न्यास एवं भूमि शोधन करे॥ १२२-१२३॥

ततश्च भूमिं संशोध्य चासनाधस्त्रिकोणकम्।
संशोध्यासनं पश्चात् सर्वविघ्नान् विनाशयेत्॥१२४॥

ततः प्रयोग

श्मशानं तत्र संचिन्त्य तत्र कल्पद्रुमं स्मरेत्।
तन्मध्ये मणिपीठञ्च नानामणिविभूषितम्॥१२५॥
नानालङ्कारसंयुक्तं मणिदेवैर्विभूषितम्।
शिवाभिर्बहुमांसास्थिमोदमानं समन्ततः॥१२६॥
चतुर्दिक्षु शिवामुण्डचिताङ्गारस्थिसंयुतम्।
तन्मध्ये भावयेद् देवीं यथोक्तध्यानयोगतः॥१२७॥

तदनन्तर आसन के अधस्थ त्रिकोण भूमिका संशोधन करें। तदनन्तर आसन शोधन करके समस्त विघ्ननाशक प्रयोग में प्रवृत्त हो जायें।

तब वहाँ श्मशान चिन्तन करके उसमें कल्पद्रुम का स्मरण करना चाहिए। तत्पश्चात् नानामणिभूषित मणि पीठ की भावना करें।

यह मणिपीठ विविध अलंकार युक्त, मणियों से अलंकृत है। शिवगण बहुविध मास तथा अस्थिभक्षण से आह्लादित होकर सभी दिशाओं में विचरण करते हैं।

उनके चतुर्दिक शव-मुण्ड तथा चिता अंगार तथा अस्थि का ढेर विद्यमान रहता है। इस प्रकार से मणिपीठ चिन्तन करके उसमें यथोक्त ध्यानयोग के साथ देवी भावना करे॥ १२४-१२७॥

ततस्ताराचमनं-ॐ उग्रतारायै स्वाहा। ॐ एकजटायै स्वाहा। ॐ नीलसरस्वत्यै स्वाहा। इत्याचम्य। ॐ ह्रीं स्वाहा इति करौ संशोध्य वधूबीजेन कूर्चेन ओष्ठौ परिशोधयेत्। पुनरस्त्रेण हस्तौ क्षालयेत्। मुखे ॐ वैरोचनाय नमः। नासायां ॐ शङ्खपाण्डराय नमः। ॐ पद्मनाभाय नमः। चक्षुषोः ॐ असिताङ्गाय नमः। ॐ मामकाय नमः। कर्णयोः ॐ मामकाय नमः। ॐ पाण्डवाय नमः। ॐ तारकाय नमः। हृदि ॐ पद्मान्ताय नमः। शिरसि ॐ यमान्तकाय नमः। वामबाहौ ॐ विघ्नान्तकाय नमः। दक्षबाहौ ॐ नरान्तकाय नमः। इति ताराचमनम्।

ॐ पवित्रे! भूमि! हुं फट् स्वाहा। इति योनिमुद्राय भूमिमभिमन्त्र्य। ॐ रक्ष रक्ष मां हुं फट् स्वाहा। इति जलसेकाद् भूमिं संशोध्य। ततः आसनाधस्त्रिकोणं विलिख्य ॐ आः सुरेखे! व्रजरेखे! हुं फट् स्वाहा इत्यासनमभ्यर्च्य ॐ ह्रीं आधारशक्ति-कमलासनाय नमः। इत्यासनमभ्यर्च्य ॐ सर्वविघ्नानुत्सारय हुं फट् स्वाहा इत्यासनमभ्यर्च्य।

आसनं तारार्णवे-

कोमलं विष्टरं वापि चूडकं मृदुकं तथा।
अष्टमासान्तगर्भस्य पतनं मृदु चोच्यते।
चतुर्वर्षान्तरालञ्च चूडकञ्च विधीयते॥१२८॥

पञ्चाशत् कुशपत्रनिर्मितं भस्मबालुकाभिः शोधितं मार्जितमिति।

ततश्चाण्डालिनीगर्भजातञ्च ब्राह्मणौरसात्।
ब्राह्मणीगर्भजातं वा चण्डालस्यापि चौरसात्।
कोमलासनमित्युक्तं मन्त्रसिद्धिप्रदायकम्॥१२९॥

इत्यादि कोमलासनं संशोध्य। ॐ सर्वविघ्नानुत्सारय हुं स्वाहा इति पुष्पाक्षतक्षेपैर्विघ्नान्नाशयेत्। दिव्यदृष्ट्यवलोकनेन खेचरान् वामपादघातत्रयेण भौमान् विघ्नानपसार्य्य-

गणेशादीन् प्रणाम्याथ दशदिग्बन्धनञ्चरेत्।
करौ च गन्धपुष्पाभ्यां शोधयेत्तदनन्तरम्॥१३०॥

तदनन्तर आचमन में प्रवृत्त हो जायें। 'ॐ उग्रतारायै स्वाहा, ॐ एकजटायै स्वाहा, ॐ नीलसरस्वत्यै स्वाहा' का उच्चारण करके आचमन करके 'ॐ ह्रीं स्वाहा' से हाथों को शुद्ध करें, फिर वधूबीज 'स्त्रीं' तथा कूर्चबीज 'हूं' द्वारा ओष्ठद्वय का शोधन करें।

पुनः अस्त्रमन्त्र 'फट्' से दोनों हाथों का प्रक्षालन करें।

पुनः मुख, नासिका, चक्षु तथा कर्ण आदि का ताराचमन करें। यथा-

मुखे-ॐ वैरोचनाय नमः। नासायां-ॐ शङ्खपाण्डराय नमः, ॐ पद्मनासाय नमः। चक्षुषोः-ॐ असिताङ्गाय नमः, ॐ नामकाय नमः। कर्णयोः-ॐ मामकाय नमः, ॐ पाण्डरायनमः, ॐ तारकाय नमः। हृदि-ॐपद्मकान्ताय नमः। शिरसि-ॐ यमान्तकाय नमः। वामबाहौ-ॐ विघ्नान्तकाय नमः। दक्षबाहौ-ॐ नरान्तकाय नमः।

तदनन्तर 'ॐ पवित्र भूमे हुं फट् स्वाहा' कहकर योनिमुद्रा द्वारा भूमि को अभिमन्त्रित करके 'ॐ रक्ष रक्ष मा हुं फट् स्वाहा' कहकर जल छिड़ककर भूमि को शुद्ध करें। अब आसन के नीचे त्रिकोण यन्त्र बनायें। 'अं आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा' से आसन का अभ्यर्चन करके 'ॐ ह्रीं आधार शक्ति कमलासनाय नमः से आसन की आराधना करके आसन पूजन इस मन्त्र से करे। 'ॐ सर्वविघ्नान् उत्सारय हुं फट् स्वाहा'।

तारार्णव में आसन का निर्देश किया गया है। जैसे कोमल, विष्टर, चूड़क तथा मृदुक। ये ४ प्रकार के आसन हैं।

इनमें अष्टमासान्त गर्भपात वाला शवासन मृदु है। जो चार वर्ष की आयु में मृत हुआ है, वह चूड़क कहलाता है। ५० कुशाओं द्वारा बना एवं भस्म बालुका संशोधित आसन विष्टर आसन है।

तथा ब्राह्मण के औरस से पैदा चाण्डालिनी गर्भजात अथवा चाण्डाल के औरस से ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न शव को कोमलासन कहते हैं। इससे सिद्धि मिलती है।

ऐसे लक्षण वाले कोमलासन का शोधन 'ॐ सर्व विघ्नानुत्सारय हुं फट् स्वाहा' मन्त्र द्वारा पुष्प एवं अक्षत निःक्षेप करके करें। तदनन्तर उसे दिव्यदृष्टि से देखकर तथा खेचर एवं भौम विघ्नों का अपसारण भूमि पर ३ बार पैर पटककर करें तथा गणेशादि देवताओं को प्रणाम करके दिक्‌बन्धन करें तथा गन्धपुष्प से शोधित करें॥ १२८-१३०॥

फडिति गन्धपुष्पाभ्यां करौ संशोध्य तालत्रयं दत्त्वा छोटिकाभिर्दशदिग्बन्धनञ्चरेत्। वस्त्रे ग्रन्थि बध्वा कायवाक्‌चित्तं शोधयेत्।

पुष्पञ्च शोधयित्वा तुं भूतशुद्धिं समाचरेत्।
ततः कर्त्तारमाराध्य मूलं शीर्षे जपेद् दश॥१३१॥

एकादश प्रजसव्यः प्रतिष्ठामनुरेव च।
मातृकान्यासकं कृत्वा मातृकायाः षडङ्गकम्॥१३२॥
कराङ्गं मातृकायाश्च योनिद्वादशकं न्यसेत्।
प्राणायामं ततः कुर्यादृष्यादिन्यास एव च॥१३३॥

तत्पश्चात् 'फट्' मन्त्र पाठ करके गन्ध-पुष्प द्वारा तालत्रय एवं अंगुष्ठ तथा मध्यमांगुलि द्वारा चुटकी बजाकर दसों दिशाओं का दिग्बन्धन तथा वस्त्र में ग्रन्थ बाँधकर वाक् तथाचित्त की शुद्धि करें। तदनन्तर पुष्पशोधन, भूतशुद्धि, कर्त्ता का ध्यान करके मस्तक पर २० बार मूलमन्त्र का तथा ११ बार प्रतिष्ठामन्त्र का जप करके मातृका न्यास, मातृका षडङ्ग, कराङ्ग न्यास तथा योनिद्वादशकन्यास करके प्राणायामोपरान्त ऋष्यादि न्यास करना चाहिए॥ १३१-१३३॥

ओं मणिधरि! वज्रिणी! महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा। इति कायवाक्चित्तं विशोधयेत्। ओं पुष्पकेतुराजार्हते शताय सम्यक् सम्बद्धाय। ओं पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पसम्भवे। पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहा। इति संशोध्य भूतशुद्धिं कुर्यात्। अथ स्वाङ्के उत्तानौ करौ कृत्वा हं सः इति कुण्डलिनीं जीवात्मानं चतुर्विंशतितत्त्वानि सुषुम्नावर्त्मना शिरोऽवस्थितपरमात्मनि शिवे संयोज्य ह्रींकारं रक्तवर्णं नाभौ ध्यात्वा तदुद्भूतेनाग्निना लिङ्गशरीरं संदह्य स्त्रींकारं पीतवर्णं हृदि विचिन्त्य तदुद्भूतेन वायुना भस्म प्रोत्सार्य्य हुंकारं श्वेतवर्णं शिरसि विचिन्त्य तदुद्भूतेनामृतेन तदस्थि प्लावितं कत्वा तस्मिन् विश्वव्यापके वारिणि आःकाराद्रक्तपङ्कजं तदुपरि टांकारात् श्वेतपङ्कजं तदुपरि हूंकारं नीलसन्निभं तदुपरि ह्रीं बीजभूषितां मातृकां ध्यायेत्।

ॐ प्रत्यालीढपदां घोरां मुण्डमालाविभूषिताम्।
खड्गकर्त्रीसमायोगे सव्येतरभुजद्वयाम्॥१३४॥
कपालोत्पलसंयुक्तसव्यपाणियुगान्विताम्।
पिङ्गोग्रैकजटां ध्यायेन्मौलावक्षोभ्यभूषिताम्॥१३५॥
अक्षोभ्यो हरमूर्द्धन्यस्त्रिमूर्त्तिर्नागरूपधृक्।
चन्द्रसूर्य्याग्निनयनां महापानप्रमत्तिकाम्॥१३६॥

तत्पश्चात् 'ॐ मणिधरि वज्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष-रक्ष हुं फट् स्वाहा।' मन्त्र द्वारा देह, वाक्य तथा चित्त का शोधन करना होगा। तदनन्तर 'ॐ पुष्पकेतु, राजार्हते शताय सम्यक् सम्बन्धाय। ॐ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पसम्भवे। पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहा' से भूतशुद्धि करनी चाहिए। अपने अंक में दोनों

ACC. NO..
DATE.......... ....

हथेली को चित्त करके स्थापन करें तथा 'ह सः' कहकर कुण्डलिनी-जीवात्मा २४ तत्त्वों को सुषुम्नावर्त्मद्वारा मस्तकस्थ परमात्मा शिव के साथ संयोजित करके नाभि में रक्तवर्ण 'ह्रीं' का ध्यान करें। उससे उत्पन्न अग्नि का चिन्तन करके भावना करें कि लिंगशरीर का दहन हो रहा है। तत्पश्चात् हृदय में पीतवर्ण 'स्त्रीं' कार की भावना करें तदुद्भूत वायु से भस्म उड़ाने की भावना करें। मस्तक में श्वेतवर्ण 'हं' कार का चिन्तन करके यह भावना करें कि उससे उत्पन्न अमृत से उस अग्नि का प्लावन हो रहा है। तब यह अमृत जल जो सर्वव्यापक है उसमें रक्तवर्ण 'आः' कर रक्त वर्ण कमल है। उसके ऊपर 'टां' कार रूप श्वेतकमल है। उसके ऊपर हुंकार रूप नीलकमल है। उसके भी ऊर्ध्व में 'ह्रीं' बीज से भूषित मातृका स्थित है। इन मातृका ध्यान करना चाहिए। ध्यान-वे प्रत्यालीढ़पदा (वाम पैर आगे तथा दक्षिण पैर पीछे है) हैं। वे घोर रूपा तथा मुण्डमाला भूषिता है। उनकी दाहिनी दोनों भुजाओं में खड्ग तथा कैंची है। उनके बायें भुजद्वय में कमल तथा कपाल हैं। वे नील-पीत मिश्रित वर्ण की आभा वाले नीलवर्ण से युक्ता-एकमात्र एकजटावाली, अत्यन्त उग्र-भीषण हैं। मस्तक पर शिव की ही तरह फणों वाले नाग हैं। वे त्रिमूर्त्तिपूत, सर्वावस्था में अचंचल, क्षोभरहित, अक्षुब्धमानसा, चन्द्र-सूर्य-अग्नि के तेज से युक्ता, त्रिनयना, रुद्ररूप वाली, मद्यपान से प्रमत्तचित्ता मूर्त्तिरूप देवी का ध्यान करें।

तदनन्तर इस ध्यान के उपरान्त अपने मस्तक पर पुष्प रखकर मानसोपचार विधान से प्रणाम करें।

तदनन्तर अपने मस्तक पर 'ॐ आं ह्रीं क्रों स्वाहा।' मन्त्र का ११ बार जप एवं प्राण प्रतिष्ठा करके कृतांजलि होकर उन मातृका का ध्यान करें॥ १३४-१३६ ॥

इति ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वान्तर्यजनप्रकारेण मानसोपचारैराराध्य नमस्कुर्य्यात्। ततः स्वशिरसि ॐ आं ह्रीं क्लीं स्वाहा इत्येकादशधा जप्त्वा प्रतिष्ठाप्य कृताञ्जलिः।

पञ्चाशल्लिपिभिर्विभक्तमुखदोपन्मध्यवक्षःस्थलां
भास्वन्मौलिनिबद्धचन्द्रशकलामापीनतुङ्गस्तनीम्।
मुद्रामक्षगुणं सुधाढ्यकलसं विद्याञ्च हस्ताम्बुजै-
र्बिभ्राणां विशदप्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामाश्रये॥१३७॥

इति मातृकां ध्यात्वा। मातृकान्यासं कुर्य्यात्। अं नमो ललाटे। आं नमो मुखे। इं नमो दक्षिणचक्षुषि। ईं नमो वामचक्षुषि। उं नमो दक्षकर्णे। ॐ नमो वामकर्णे। ऋं नमो दक्षनसि। ॠं नमो वामनासि। लृं नमो दक्षगण्डे। लॄं नमो वामगण्डे। एं नमो

ओष्ठे। ऐं नमो अधरे। ओं नमो ऊद्ध्र्वदन्ते। औं नमो अधोदन्ते। अं नमो ब्रह्मरन्ध्रे। अः नमो मुखे। कं नमो दक्षबाहुमूले। खं नमः कर्पूरे। गं नमः कवचे। घं नमोऽङ्गुलिमूले। ङं नमोऽङ्गुल्यग्रे। तथा दक्षहस्तेन चं छं जं झं ञं वामबाहुमूलचतुःसन्ध्यग्रेषु टं ठं डं ढं णं दक्षपाद-मूलचतुःसन्ध्यग्रे तं थं दं धं नं वामपादमूलचतुःसन्ध्यग्रेसु। पं नमो दक्षपार्श्वे। फं नमो वामपर्श्वे। बं नमः पृष्ठे। भं नमो नाभौ। मं नम उदरे। यं नमो हृदये। रं नमो दक्षस्कन्धे। लं नमः कुकुदि। वं नमो वामस्कन्धे। शं नमो हृदादिदक्षकरे। षं नमो हृदादिवामकरे। सं नमो हृदादिदक्षपादे। हं नमो हृदादिवामपादे। लं नमो हृदादि उदरे। क्षं नमो हृदादिमुखे।

अब ध्यान कहते हैं-५० वर्णों से जिनका मुखमण्डल, बाहु, पद, कटि तथा वक्ष विभक्त है, जिनके परम भास्वर मस्तक पर शशिखण्ड स्थित है, जिनके स्तनयुगल पीन तथा उन्नत हैं, जिनके कर कमलों में मुद्रा अक्षमाला-सुधाकलस तथा विद्या स्थित है, उनकी दीप्त वर्णमाला परम निर्मल है। वे त्रिनयना हैं। मैं ऐसी वाग्देवी का आश्रय ग्रहण करता हूँ॥ १३७॥

मातृकान्यास

ललाट	- ॐ नमः	मुख	- आं नमः	दाहिनानेत्र	- इं नमः।
वामनेत्र	- ईं नमः	दक्षिणकर्ण	- ॐ नमः	वामकर्ण	- ॐनमः।
दक्षिणनासिका	- ऋं नमः	वामनासिका	- ॠं नमः	दक्षिणकपोल	- लृं नमः।
वाम कपोल	- लॄं नमः	ऊपरी ओष्ठ	- ए नमः	नीचे का ओष्ठ	- ऐं नमः।
ऊर्ध्वदन्तपंक्ति	- ओं नमः	निम्नदन्तपंक्ति	- औं नमः	ब्रह्मरन्ध्र	- अं नमः।
मुख	- अः नमः	दाहिना बाहुमूल	- कं नमः	केहुनी में	- खं नमः।
कवच (कलाई में)	- गं नमः	अंगुलिमूल में	- घं नमः	अंगुल्याग्र में	- ङंनमः।

वामकरस्थ सन्धियों में (वाम बाहुमूल तथा चारों सन्धि में) → चं छं जं झं ञं।

दाहिने बाहुमूल तथा चारों सन्धि में → टं ठं डं ढं णं।

वामपादमूल तथा चारों सन्धि में → तं थं दं धं नं।

दाहिने पार्श्व में	- पं नमः।	वाम पार्श्व में	- फं नमः।		
पृष्ठ में	- वं नमः।	नाभि में	- भं नमः।		
उदर में	- मं नमः।	हृदय में	- यं नमः।	वाम स्कन्ध में	- वं नमः।
दाहिने कन्धे में	- रं नमः।	ककुद में	- लं नमः।		
हृदादि वाम कर में	- षं नमः।	हृदादिदक्ष कर में	- शं नमः।		
हृदादि दक्ष पाद में	- सं नमः।	हृदादि उदर में	- लं नमः।		
हृदादि मुख में	- क्षं नमः।				

मतान्तरे यथा-

ललाटे मुखवृत्ते च चक्षुषोः कर्णयोर्नसोः।
गण्डयोरोष्ठयोर्वापि दन्तपंक्तयोर्विशेषतः॥१३८॥
ब्रह्मरन्ध्रे पुनर्वक्त्रे अकारादीन् न्यसेद् बुधः।
तर्जनीमध्यमायोगं अकारे विन्यसेद् बुधः॥१३९॥
मध्यंमानामिकायोगाद् मध्यं वक्त्रे न्यसेत् ततः।
मध्यमाङ्गुष्ठयोगेन विन्यसेच्चक्षुषोस्तथा॥१४०॥
अनामाङ्गुष्ठयोगेन कर्णयोर्न्यसनीयकम्।
तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन नासायोगे परिन्यसेत्॥१४१॥
अनामामध्यमायोगाद् गण्डयोर्विन्यसेत् सदा।
अङ्गुष्ठपर्वणा न्यासः कर्त्तव्यश्चोष्ठयोरपि॥१४२॥
मध्यमाग्रं समादाय दन्तयोर्न्यसनीयकम्।
अङ्गुष्ठाग्रं ब्रह्मरन्ध्रे मुखे करतलं विदुः॥१४३॥
विद्यामुद्रां समादाय हस्तयोः साधकोत्तमः।
विन्यसेद्धस्तपादेषु पार्श्वे पृष्ठे च नाभितः॥१४४॥
हृदाकारं तलं प्रोक्तं मातृकान्यासकर्मणि।
ककुदि स्कन्धयोर्वापि पुनः सर्वत्र हस्तयोः॥

ततो मूलेन शिर आदि पादान्तं पादादि शिरोऽन्तं शिर आदि हृदयान्तं हृदादि मुखान्तम् इति व्यापकत्रयं कुर्य्यात्।

अकारादिपुटैवर्गैर्न्यसेदङ्गकराङ्गकम्॥१४५॥

अब मतान्तर कहते हैं- ललाट, मुखमण्डल, चक्षुद्वय, कर्णयुगल, नासिकाद्वय, गण्डयुग्म, दोनों ओंठ, दोनों दन्तपंक्ति का न्यास अकरादि क्रमेण करें। ब्रह्मरन्ध्र में तथा मुख में (पुनः) अकरादिन्यास करें। ललाट में मध्यमा तथा तर्जनी से अकरादि न्यास करें। तनदन्तर मध्यमा तथा अंगुष्ठ योग से उभय नेत्रों का स्पर्श करें।

अनामिका तथा अंगुष्ठयोग से दोनों कर्ण में, तर्जनी तथा अंगुष्ठ योग से नासिकाद्वय में न्यास करें।

अनामिका तथा मध्यमा योग से गण्डद्वय में, अंगुष्ठपर्व द्वारा अधर एवं ओष्ठ में न्यास करना चाहिए।

मध्यमा तथा कनिष्ठा के योग से दन्त पंक्तिहृदय में तथा अङ्गुष्ठाग्र से ब्रह्मरन्ध्र में, करतल से मुख में न्यास करें।

विद्यामुद्रा से दोनों हाथों में न्यास करें। इसी प्रकार स्कन्ध, पाद, पार्श्व, पृष्ठ, नाभि तथा सर्वत्र मातृ का न्यास करें।

इसी का नाम है हृदाकार तल। हाथ-पैर तथा बगल में पीठ में तथा नाभि से लेकर हृदाकार तक के न्यास कर्म में यह तल है। अतः ककुद-स्कन्ध तथा सर्वाङ्ग में न्यास करे। दोनों स्कन्ध तथा पुनः दोनों हाथ में न्यास करे।

मूलमन्त्र से शिर से पैर तक, शिर से हृदय तक, हृदय से मुख तक तीन व्यापक न्यास करके निम्नोक्त विधानानुरूप अकारादि स्वर तथा व्यंजनों द्वारा करांगन्यास अंगन्यास करें॥ १३८-१४५॥

अथ अङ्गन्यासः

अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः। इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा। उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट्। एं तं थं दं धं नं ऐं कचाय हुं। ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट्। अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः करतलपृष्ठाभ्याम् अस्त्राय फट्। अं कं खं गं घं ङं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा। उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां वषट्। एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां हुं। ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः करतलपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्।

योनिद्वादशविद्याञ्च विन्यसेत् साधकोत्तमः।
मूर्ध्नि वक्त्रे तथा कण्ठे हृदये चोदरे तथा॥१४६॥
नाभावाधारपद्मे च पदोर्बाह्वोश्च सर्वतः।
योनिवेद्या योनिनित्या योनिरूपा तथैव च॥१४७॥
योनिमध्य योनिसिद्धा योनिक्लृप्ता च योनिदा।
योनिहा योनिसाध्या च योनिज्ञाना च योनिपा।
योनिपुण्या तथान्यासश्चतुर्वर्गस्य सिद्धये॥१४८॥

अथ योनिन्यासः

मृगमुद्रया मूर्ध्नि ॐ योनिवेद्यायै नमः। वक्त्रे ॐ योनिनित्यायै नमः। कण्ठे ॐ योनिरूपायै नमः। हृदये ॐ योनिमध्यायै नमः। उदरे ॐ योनिसिद्धायै नमः। नाभौ ॐ योनिक्लृप्तायै नमः। मूलाधारे ॐ योनिदायै नमः। दक्षपादे ॐ योनिहायै नमः। वामपादे ॐ योनिसाध्यायै नमः। दक्षबाहौ ॐ योनिज्ञानायै नमः। वामबाहौ ॐ योनिपायै नमः। सर्वाङ्गे ॐ योनिपुण्यायै नमः। इति विन्यसेत्। इति द्वादशयोनिन्यासः।

अथ प्राणायामः

दक्षहस्ताङ्गुष्ठेन दक्षनासापुटं धृत्वा मूलं षोडशवारं जप्त्वा वायुं पूरयेत्। ततो नासापुटौ कनिष्ठिकानामिकाभ्यां धृत्वा चतुःषष्ठिवारजपेन कुम्भयित्वा वामनासायां कनिष्ठनामिकाभ्यां धृत्वा द्वात्रिंशद्वार जपेन दक्षिणेन रेचयेत्। पुनर्दक्षिणेनीपूर्व्य वामेन रेचयेत्।

कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्यन्नासापुटधारणम्।
प्राणायामः स विज्ञेयः पूरकुम्भकरेचकैः ॥१४९॥

अथ ऋष्यादिन्यासः

शिरसि ॐ अक्षोभ्य ऋषये नमः। मुखे ॐ बृहस्पतिच्छन्दसे नमः। हृदि श्रीमत्तारायै एकजटायै देव्यै नमः। मूलाधारे हुं बीजाय नमः। पादयोः फट् शक्तये नमः सर्वाङ्गे निजबीजकीलकाय नमः।

अथ पीठशक्तिन्यासः

पीठन्यासं ततः कृत्वा पीठशक्तिं न्यसेत्ततः।
तत्तन्यासं विधायाथ बीजन्यासं समाचरेत्॥१५०॥

अब अंग न्यास कहते हैं- इसे मूलोक्त विधान से करें। इसके अनुवाद की आवश्यकता नहीं है। यह करांगन्यास है।

अब योनि न्यास कहते हैं- अब साधक गण-योनिद्वादशविद्या विन्यस्त करें। मस्तक, मुख, कण्ठ, हृदय, उदर, नाभि, आधार, पदद्वय, बाहुयुगल में यथाक्रम से चतुर्वर्ग सिद्धि हेतु निम्न प्रकार से योनिन्यास करें-

मृगमुद्रा से शिर-ॐ योनिवेद्यायै नमः।	मुख-ॐ योनिनित्यायै नमः।
कण्ठ में-ॐ योनिरूपायै नमः।	हृदय-ॐ योनिमध्यायै नमः।
उदार-ॐ योनिसिद्धयै नमः।	नाभि-ॐ योनिक्लृप्तायै नमः।
मूलाधार-ॐ योनिदायै नमः।	दक्षिण पैर-ॐ योनिदायै नमः।
वाम पैर-ॐ योनिसाध्यायै नमः।	दाहिनी भुजा-ॐ योनिज्ञायै नमः।
वाम बाहु-ॐ योनिषायै नमः।	सर्वाङ्ग-ॐ योनिपुण्यायै नमः।

अब प्राणायाम कहते हैं- अब दाहिने हाथ के अंगूठे से दाहिनी (दबाकर) नासापुट स्पर्श करते मूलमन्त्र और १६ जप करते हुए वायु का पूरक करें, तब दोनों नासापुट दबाकर

६४ बार जप करते कुम्भक करें तथा कनिष्ठा एवं अनामिका द्वारा दक्षिण नासिका से ३२ बार मन्त्र जप करते हुए रेचक करें। इसी प्रकार पुनः दाहिनी नासिका से वायु पूर्ण कर वाम से तथा वाम से वायु का पूरक करके दक्षिण से वायु का रेचक करना चाहिए। पूरक, कुम्भक तथा रेचक विधान क्रमेण कनिष्ठा, अनामिका तथा अंगुष्ठ से नासिका धारण करने को प्राणायाम कहते हैं। इसे तीन बार करें। यही प्राणायाम है।

अब ऋष्यादि विन्यास कहते हैं-

शिर-ॐ अक्षोभ्य ऋषये नमः। मुख-ॐ बृहस्पतिच्छन्दसे नमः।

हृदय-श्रीमत्तारायै एकजटायै देव्यै नमः। मूलाधार-हुं बीजाय नमः।

पैर-फट् शक्तये नमः। सर्वाङ्ग-निबीज कीलवायै नमः। अब पीठशक्ति न्यास करें। इसके बाद तत्वन्यास करके बीजन्यास करें॥ १४६-१५०॥

करांङ्गञ्च षडङ्गञ्च न्यस्त्वा वर्णान्यसेत्ततः।
संशोध्य यन्त्रं देहे तु पीठपूजां समाचरेत्॥१५१॥
गणेशं वटुकञ्चैव क्षेत्रपालञ्च योगिनीम्।
पीठपूजां ततः कृत्वा पीठशक्ति प्रपूजयेत्॥१५२॥
षोढां कृत्वा ततो मन्त्री अर्घ्यं कृत्वा च तत् पुनः।
व्यापकं पञ्चधा कृत्वा पूजयेत् परदेवताम्॥१५३॥

हृदि हस्तं दत्त्वामृगमुद्रया हृत्पद्मस्य केशरेषु-

ॐ श्मशानाय नमः। ॐ कल्पवृक्षाय नमः। ॐ मणिपीठाय नमः। ॐ नानालङ्कारेभ्यो नमः। ॐ मुनिभ्यो नमः। ॐ देवेभ्यो नमः। ॐ बहुमांसास्थिमोदमानशिवाभ्यो नमः। चतुर्दिक्षु ॐ शवमुण्डचिताङ्गारास्थिभ्यो नमः। इति पीठन्यासः।

हृदि ॐ लक्ष्म्यै नमः, ॐ सरस्वत्यै नमः, ॐ प्रीत्यै नमः, ॐ कीर्त्त्यै नमः, ॐ शान्त्यै नमः, ॐ तुष्ट्यै नमः, ॐ पुष्ट्यै नमः।

अथ तत्त्वन्यासः

ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा इति आधारादि हृत्पर्य्यन्तम्। ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा इति हृदादि मुखपर्य्यन्तम्। ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा इति मुखादि ब्रह्मरन्ध्रान्तम्।

अथ बीजन्यासः।

मन्त्रं पञ्चखण्डं कृत्वा ब्रह्मरन्ध्रात् ललाटान्तम्। आद्यबीजं नमोऽन्तं न्यसेत्। ललाटात् मुखान्तं द्वितीयबीजं नमः। मुखादाकण्ठं तृतीयबीजं नमः। कण्ठात् हृदयान्तं चतुर्थवर्ण नमः। हृदयान्मुखान्तं पञ्चमवर्ण नमः।

अथ कराङ्गन्यासः

हकारं रेफसंयुक्तं षड्दीर्घेण समन्वितम्।
चन्द्रखण्डयुतं कृत्वा विन्यसेत् साधकोत्तमः॥१५४॥

इसके पश्चात् कराङ्गन्यास एवं षडङ्गन्यासोपरान्त यन्त्रशोधन करके देह में पीठपूजन करें। गणेश, बटुक, क्षेत्रपाल तथा योगिनी का पूजन करके पीठपूजा सम्पन्न करके पीठशक्ति आराधन करें। तदनन्तर षोढ़ा विधान (गणेश-बटुक-क्षेत्रपाल-योगिनी-पीठपूजा-पीठशक्ति पूजा, यही षोढ़ा पूजा है) सम्पन्न करके पुनः अर्घ्यप्रदान करके ५ बार व्यापकन्यासोपरान्त परमदेवता की पूजा करनी चाहिए।

अब हृदय पर हाथ रखकर मृगमुद्रा में हृत्पद्म के केशों पर मूलोक्त मन्त्रों से पीठन्यास करें। (इसका अनुवाद निष्प्रयोज्य है)।

तदनन्तर मूलोक्त विधि से तत्वन्यास करें। यथा-

मूलाधार से हृदय तक-ॐ आत्मतत्वाय स्वाहा।

हृदय से मुख तक-ॐ विद्यातत्वाय स्वाहा।

मुख से ब्रह्मरन्ध्र तक-ॐ शिवतत्वाय स्वाह।

अब बीजन्यास कहते हैं। शरीर को ५ भाग में बाँटकर ब्रह्मरन्ध्र से ललाट पर्यन्त आद्यबीज में नमः लगाकर न्यास करें।

ललाट से मुखपर्यन्त-द्वितीय बीज में नमः लगाकर न्यास करें।

मुख से कण्ठपर्यन्त-तृतीय बीज में नमः लगाकर न्यास करें।

कण्ठ से हृदयपर्यन्त-चतुर्थ बीज में नमः लगाकर न्यास करें।

हृदय से मुखपर्यन्त-पंचम बीज में नमः लगाकर न्यास करें।

अब कराङ्ग न्यास कहते हैं। रेफ सहित हकार को षट्दीर्घ से जोड़कर उस पर चन्द्रबिन्दु लगाकर न्यास कर यह करांगन्यास है॥ १५१-१५४॥

एकजटा तारिणी च न्यस्या वज्रोदका तथा।
उग्रजटा ततो न्यस्या महाप्रतिसरा तथा॥
पिङ्गोग्रैकजटा पश्चात् कराङ्गेषु षडङ्गतः॥१५५॥
ध्यायेत् श्रीतारकादेवीं करकच्छपमुद्रया।
विशेषतः फलार्थी च ध्यायेत् तां योनिमुद्रया॥१५६॥

यथा-दोनों अंगुष्ठ-ह्रां एकजटायै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।

दोनों तर्जनी–ह्रीं तारिण्यै तर्जनीभ्यां नमः।

दोनों मध्यमा–हूं वज्रोदके! मध्यमाभ्यां बषट्।

दोनों अनामिका–हैं उग्रजटे! अनामिकाभ्यां हुं।

दोनों कनिष्ठा–ह्रीं महाप्रतिसरे! कनिष्ठाभ्यां वौषट्।

ह्रः पिङ्गोग्रैकजरे करतल पृष्ठाभ्यां फट्।

अब षडङ्गन्यास कहते हैं– इसे मूलोक्त विधि से करे।

मन्त्रशोधन प्रकार–

हृदय–	अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं नमः।
दक्षिण भुजा–	एं ऐं ओं औं, कं खं गं घं नमः।
वाम बाहु–	ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं नमः।
दहिना पैर–	णं तं थं दं धं नं पं फं मं नमः।
बायाँ पैर–	मं यं रं लं वं शं सं सं हं लं क्षं नमः।

इस न्यास के पश्चात् एकजटा मन्त्रोद्धार करके इस प्रकार यन्त्र संस्कार करे–'ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् नमः।'

योनिमुद्रा प्रदर्शन करके यन्त्रशोधन होगा।

अब पूजा प्रारंभ कहते हैं–

पूर्व–	ॐ ह्रीं गां गणपतये नमः।
दक्षिण–	ॐ ह्रीं वां बटुकाय नमः।
पश्चिम–	ॐ ह्रीं क्षें क्षेत्रपालाय नमः।
उत्तर–	ॐ ह्रीं यां योगिनीभ्यो नमः।

पीठन्यासवत् पीठपूजनोपरान्त पूर्वादि अष्टदल में पीठशक्ति पूजा करके 'हसौः सदाशिव महाप्रेत पद्मासनायः नमः।' कहकर नमस्कार करें।

तदनन्तर अपने वामभाग में मध्यबिन्दु के बाहर त्रिकोण, वृत्त तथा चतुरस्त्रमण्डलांकन करके, त्रिकोण मध्य में बिन्दु लिखकर उसमें श्रीमदेकजटादेवी को प्रणाम करके उनके अर्घ्यस्थान को नमस्कार करें तथा वहाँ एक तिपाई को आह्वानमन्त्र से आह्वान करके जल से अभ्युक्षण करके फट् मन्त्र से पाद प्रक्षालन (तिपाई) करके वहाँ स्थापित करें। तदनन्तर श्रीमदेकजटा देवी को नमस्कार करके अर्चना करें।

तदनन्तर मूलमन्त्रोच्चारण करके पात्र को पूर्ण करके रक्त चन्दन, विल्वपत्र, दूर्वा तथा अक्षतादि चढ़ाए। अब विलोम मातृ वर्ण तथा मूलमन्त्र पढ़ते हुए बिन्दु से विगलित हो रहे सुधाजल से शंख को भरकर ''गङ्गे च यमुने चैव'' इत्यादि मन्त्र से तीर्थ का आह्वान करके अंकुशमुद्रा द्वारा अर्घ्य आह्वान करके 'वं' वरुण मन्त्र द्वारा धेनुमुद्रा प्रदर्शित करते हुए उसका अमृतीकरण करना चाहिए। अब योनिमुद्रा-प्रदर्शन तथा मत्स्यमुद्रा से आच्छादन करके उसमें देवी का ध्यान एवं पुष्पांजलि प्रदान करके षडङ्गविन्यास करके उसमें १० बार मूलमन्त्र जप करे। उस जल से पुष्पादि के द्वारा आत्मा तथा पूजोपकरणों का अभ्युक्षण करके पश्चार्घ्य द्वारा व्यापक न्यास करके देवी ध्यान करें। करकच्छप मुद्रा से विशेषतः फलार्थ पुरुष योनिमुद्रा प्रदर्शन सहित देवी का ध्यान करे॥ १५५-१५६॥

तथा ह्रां एकजटायै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ह्रीं तारिण्ये तर्जनीभ्यां स्वाहा। ह्रूं व्रजोदके मध्यमाभ्यां वषट्। ह्रौं पिङ्गोग्रैकजटे करतलपृष्ठाभ्याम् अस्त्राय फट्।

अथ षडङ्गन्यासः

ह्रां एकजटायै हृदयाय नमः। ह्रीं तारिण्यै शिरसे स्वाहा। ह्रूं वज्रोदके शिखायै वषट्। ह्रैं उग्रजटे कवचाय हुं। ह्रौं महाप्रतिसरे नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्रः पिङ्गोग्रैकजटे करतलपृष्ठाभ्याम् अस्त्राय फट्।

अथ मन्त्रशोधनप्रकारः

अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं नमो हृदि। एं ऐं ओं औं कं खं गं घं नमो दक्षबाहौ। ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं नमो वामबाहौ। णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं नमो दक्षपादे। मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं नमो वामपादे। ततः श्रीमदेकजटायन्त्रम् उद्धृत्य संस्कुर्यात्। ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हुँ फट् नमः। इति योनिमुद्रां प्रदर्श्य यन्त्रं शोधयेत्।

अथ पूजाप्रारम्भः

ततः पूजामारभेत्। पूर्वादितःॐह्रीं गां गणपतये नमः। दक्षिणे ॐ ह्रीं वां वटुकाय नमः। पश्चिमे ॐ ह्रीं क्षें क्षेत्रपालाय नमः। उत्तरे ॐ ह्रीं यां योगिनीभ्यो नमः। पीठन्यासवत् पीठपूजां कृत्वा पूर्वाद्यष्टदले पीठशक्तिं संपूज्य मध्ये हसौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः।

ततः स्ववामे बिन्दुमध्यत्रिकोणवृत्तचतुरस्रमण्डलं कृत्वा तत्र श्रीमदेकजटादेव्याः अर्घ्यस्थानाय नमः। तत्र त्रिपदिकामावाह्य जलेनाभ्युक्ष्य फडिति पात्रं प्रक्षाल्य यत्र संस्थाप्य श्रीमदेकजटादेव्याः। ॐ अर्घ्यपात्राय नमः।

ततो मूलेनापूर्य्य रक्तचन्दनबिल्वपत्रदूर्वाक्षतादीन्निक्षिप्य विलोममातृकावर्णैर्मूलेन च बिन्दुस्रुतसुधामयजलेन शङ्खमापूर्य्य तत्र गङ्गे चेत्यादिना। अङ्कुशमुद्रया अर्घ्यामावाह्य वं इति धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य योनिमुद्रां प्रदर्श्य मत्स्यमुद्रया आच्छाद्य तत्र देवीं ध्यात्वा पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा षडङ्गानि विन्यस्य मूलं तत्र दशधा जप्त्वा तज्जलैः पुष्पादिना आत्मानं पूजोपकरणं चाभ्युक्ष्य पञ्चार्घ्यं कृत्वा पञ्चधा व्यापकं कृत्वा देवीं ध्यायेत्।

प्रत्यालीढपदार्पिताङ्घ्रिरावहृद्घोराट्टहासा परा
४खड्गेन्दीवरकर्त्रिखर्परभुजा हुंकारबीजोद्भवा।
खर्बा नीलविशालपिङ्गलजटाजूटैकनागैर्युता
जाड्यं न्यस्य कपालके त्रिजगतां हन्त्युग्रतारा स्वयम्॥१५७॥

अब देवी ध्यान कहते हैं-जो प्रत्यालीढ़ पद से शव के हृदय पर चरण धारण करती हैं, जो भयंकर अट्टहासपूर्वक हैं, वे परमाप्रकृति हैं। उनके हाथ में खड्ग, इन्दीवर, कैंची तथा खप्पर है। उनकी आविर्भाव भूमि है हुंकार बीज। वे खर्वाकृति हैं। उनके जटाजूट विशाल तथा नीलपिंगला हैं। उनके मस्तक पर एक सर्प विराजित रहता है। वे स्वयं उग्रतारा हैं तथा तीनों लोक का संहार साधन करती हैं॥ १५७॥

इति ध्यात्वा यन्त्रे तत् पुष्पं दत्त्वा ध्यानरहस्यं विभाव्य आवाहयेत्।

यथा सर्वामभिनवजलधरनीलां लम्बोदरीं व्याघ्रचर्मावृतशोभितकटीम्, पीनोन्नतपयोधरां रक्तवर्त्तुलनेत्रत्रयां पृष्ठेऽतिनीलजटाजूटां शीर्षेऽक्षोभ्यमहादेवकृत-नागफणातिशोभितां पार्श्वद्वये लम्बमाननीलोत्पलमालां पञ्चमुद्रास्वरूपशुभ्रत्रि-कोणाकारकपालपञ्चतमाम् अतिनीलजटाजूटां विस्तीर्णचमरिकाकेश इव महाविगलितचिकुरां शुभ्रवर्णतक्षकनागकृतङ्कणं रक्तवर्णनागकृतस्वल्पहारां चित्रितवर्णशेषनागकृतहारां स्वर्णवर्णस्वल्पनागपादाङ्गुरीयकाम् ईषद्रक्तनागकृतकटिसूत्रां दूर्वादलश्यामलनागकृतवलयां चन्द्रसूर्य्यवह्निकृतनेत्रत्रयां कोटिकोटि-बालरविच्छविकृतदक्षिणनेत्रां कोटिकोटिबालचन्द्रकृतवामनेत्रां लक्षलक्षदहनकृतोर्ध्वनेत्रां कोटिकोटिबालचन्द्रकृतवामनेत्रां लक्षलक्षदहनकृतोर्ध्वनेत्रां ललज्जिह्वां महाकालशवरूपहृदयस्थितसङ्कुचितदक्षिणचरणां शवपादद्वयस्थितप्रसारितवामचरणाम् एतेन प्रत्यालीढपदां सद्यश्छिन्नगलद्रुधिरान्योन्यकेशग्रथितमुण्डमालावलीरम्यां सर्वस्त्र्यलङ्कारशोभितां महामोहविमोहिनीं महामोक्षविदायिव.ां विपरीतरताशक्तां रत्यावेशस्मेराननाम्।

दक्षिणहस्ताधोधृतकर्त्रिकां तदूर्ध्वे लक्षचन्द्रहासखड्गधरां वामोर्ध्वे सर्वशिष्याणां भयहरणाय आसवगतितनीलोत्पलकिञ्चिद्विकस्मररक्तनागधरां तदधः कपाल-

चसकसद्यःकृत्तमुण्डशोभितभुजां हुङ्कारबीजोद्भवां सर्वब्रह्माण्डानां कर्त्रीं क्षपयत्रीं षोडशाब्दां सर्वज्ञानविदायिनीं ध्यात्वा आवाहयेत्।

ॐ देवेशि! भक्तिसुलभे! परिवारसमन्विते!।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव॥१५८॥

यह ध्यान करके यन्त्र में पुष्पदान तथा ध्यानभावना करके आह्वान करें-यथा-वे विश्वरूपा हैं। अभिनव-मेघ के समान नीलवर्ण हैं। उनके उदर झूलते भये हैं। उनका कटि प्रदेश व्याघ्रचर्म से ढका तथा शोभित है। उनके स्तनद्वय पीन तथा उन्नत हैं। उनके नेत्रद्वय वर्त्तुल तथा रक्तवर्ण हैं। उनका जटाजूट नीलवर्ण है तथा पीठ पर लटक रहा है। उनका शीर्ष अक्षोभ्य नाग के फणों से अत्यन्त शोभित है। उनके पार्श्वद्वय में नील कमल की माला लटक रही है। वे पंचमुद्रारूप शुभ्रस्वरूप त्रिकोणाकृति पाँच मुण्डों पर विराजित हैं। उनका जटाजूट नीलाञ्जन प्रभायुक्त है। वे विशाल चँवर जैसे केश से शोभित हैं। वे श्वेत तक्षक नाग के कंकण को धारण करती हैं। उनका छोटा हार रक्तवर्ण सर्प का है। उनका हार विचित्रवर्ण शेषनाग से बना है। स्वर्ण वर्ण के छोटे नाग उनके चरणों के अङ्गुरीयक बने हैं। उनका कटिसूत्र तनिक रक्तवर्ण नाग विरचित है। उनके हाथ में दूर्वादलश्याम नाग-वलयरूपेण विराजित हैं। चन्द्र-सूर्य-अग्नि उनके नेत्र हैं। कोटि-कोटि बाल रवि की प्रभा उनके दाहिने नेत्र की है। कोटि-कोटि बालचन्द्र की द्युति अथवा वामनेत्र हैं। लाखोंलाख अग्नि उनका ऊर्ध्वनगन हैं। उनकी जिह्वा लपलपाती रहती है। उनके दक्षिण चरण महाकाल शव के हृदय पर संकुचित रूप से स्थित है। उन्होंने अपना बायाँ पैर फैलाकर शव के पादद्वय पर इससे वे प्रत्यालीढ़पदा हैं। विगलित रुधिरधारा से परिप्लुत परस्परतः केश से ग्रथित सद्यच्छिन्न मुण्डमालावलि के संसर्ग से उन्होंने सभी लोक में रमणीय मूर्त्ति धारण किया है। वे स्त्रीजनोचित सभी अलंकारों से भूषित हैं। वे महामोह नाशिनी तथा महामोक्षप्रदात्री तथा विपरीत रतियुता हैं। रति के आवेश के कारण उनका मुखमण्डल कामभावापन्न है। उनके दाहिने हाथ में (अधोदिक हाथ में) कैंची, ऊपरी दाहिने हाथ में लक्ष चन्द्रहास खड्ग है। ऊपरी वाम हाथ में समस्त शिष्यों के भयनिवारणार्थ गलित, आसव, नीलोत्पल, किंचित् किंचित कालों से विषहीन रक्तवर्ण नाग है तथा उनके अधोभाग वाले हाथ में कपाल, सुरापानपात्र तथा तत्काल कटा मुण्डशोभित हैं। ने हुंकार बीज से आविर्भूता हैं। वे समग्र ब्रह्माण्ड की सृष्टि-संहार की मूल हैं। वे १६ वर्षीया तथा सर्वज्ञता की जननी हैं। ऐसे ध्यान के साथ आह्वान करें।

हे देवि! भक्तिसुलभे! हे परिवार समन्विते! जब तक मैं पूजारत रहूँ, तब तक आप यहाँ स्थिर होकर विराजित रहिये॥ १५८॥

इत्युक्त्वा ऊर्ध्वाञ्जलिना श्रीमदेकजटे! देवि! इहागच्छागच्छ अधोमुखाञ्जलिना इह तिष्ठ तिष्ठ गर्भाङ्गुष्ठमुष्टिभ्याम् इह सन्निधेहि तदधोमुखेन इह सन्निरुद्धस्वहस्तं भ्रामयित्वा अत्र अधिष्ठानं कुरु मम पूजां गृहाण।

आकारं बिन्दुसंयुक्तं मायापाशविभूषितम्।
वह्निजाया च हंसान्तः प्रतिष्ठामन्त्र ईरितः॥१५९॥

आं ह्रीं क्रीं स्वाहा हंसः श्रीमदेकजटादेवतायाः प्राणां इह प्राणाः एवं जीव इह स्थितः एवं सर्वेन्द्रियाणि इह स्थितानि एवं वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणाप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा। इत्यनामाङ्गुष्ठसंयुक्ताग्रेण प्रतिष्ठापयेत्। ततो मूलं दशधा जप्त्वा धेनुयोनिमत्स्याङ्कुशशङ्खखड्गमृगगालिनीमुद्राः प्रदर्श्य श्रीमदेकजटे! देवि! वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा। इति पुष्पाञ्जलीन् दत्त्वा पूजयेत्।

आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्।
मधुपर्काचमनं स्नानं वसनाभरणानि च।
सुगन्धि कुसुमं धूपदीपनैवेद्यवन्दनम्॥१६०॥

यह कहने के पश्चात् ऊर्ध्वांजलि प्रदर्शन करते कहे-'हे श्रीमदेकजटे देवि! यहाँ आइये। यहा आइये।' यह कहकर अधोमुखीन अंगुलि करके कहे- 'यहाँ अवस्थित होइये। यहाँ अवस्थित होइये। तब गर्भाङ्गुष्ठमुष्टि करके कहें-'यहाँ सन्निहित होइये, यहाँ सन्निहित होइये। इस प्रकार वाक्य प्रयोग करके उस अधोमुख अंजलि द्वारा कहें-'यहाँ अधिष्ठित होइये तथा मेरी पूजा ग्रहण करिये।' यह कहें।

बिन्दु युक्त आकार (आं) माया (ह्रीं) पाश (क्रों) वह्निजाया (स्वाहा) तथा अन्त में 'हंस' यही है प्रतिष्ठायन्त्र। मन्त्रोद्धार है 'आं ह्रीं क्रों स्वाहा हंसः श्रीमदेकजटादेवतायाः प्राणा इह प्राणाः एवं जीव स्थितः एवं सर्वेन्द्रियाणि इह स्थितानि एवं वाङ्मनश्चक्षुश्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।' यह कहकर अनामिका तथा अंगुष्ठ के योग से प्राणप्रतिष्ठा करें। तदनन्तर मूलमन्त्र का १० जप करने के उपरान्त धेनु, योनि, मत्स्य, अंकुश, शशांक, खड्ग, मृग, गालिनी मुद्रायें प्रदर्शनोपरान्त निम्नांकित मन्त्र से पुष्पादि द्वारा पूजन करें, 'श्रीमदेकजटे! देवि! वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा।' आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, आचमन, स्नान, वसन, आमरण, सुगन्धि, कुसुम, धूप, दीप, नैवेद्य चन्दन-इस षोडश उपचार अथवा दस उपचार अथवा पञ्चोपचार से पूजन करें॥ १५९-१६०॥

दशोपचारैर्वा पञ्चोपचारैर्वा पूजयेत्। पुरुषधिया सोऽहमिति मत्त्वा ॐ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट्-स्वाहा इत्युच्चार्य्य पूजयेत्। एतत् पाद्यं नमः पाद्यं गृहीत्वा तदुपरि

पूजामन्त्रम् एकजटादेवतायै एतत् पाद्यं नमः। इति कृतमुष्टिप्रसारिताङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां दद्यात्। तथा इदमर्घ्यं स्वाहा।

पाद्यञ्च पादयोर्दद्यात् मौलौ चार्घ्यं निवेदयेत्।
गन्धं भाले तथा पुष्पं पादयोश्च निवेदयेत॥१६१॥

इदं स्नानीयं स्वधा। मृगमुद्रया गन्धोऽयं नमः। अञ्जलिना पुष्पाणि वौषट्। ततः स्ववामे घण्टां चानीय गन्धपुष्पाभ्यां ॐ जयध्वनिमन्त्रमातः स्वाहा इति घण्टां संपूज्य धूपं पात्रोपरि संस्थाप्य पूजामन्त्रं जप्त्वा वामहस्ते धृत्वा एष धूपः स्वधा। इति निवेद्य मृग मुद्रया नीत्वा वामहस्तेन घण्टां वादयन् आनासामुखतो धूपसमीरणं घ्रापयेत्। तथा दीपोऽयं स्वाहा। दृष्टिपर्य्यन्तं दीपं दत्त्वा नीराजयेत्। तथान्यत् सर्वं मालादिकं देयम्।

स्ववामे त्रिकोणं विलिख्य तत्र नैवेद्यमानीय रम् इति धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य योनिमुद्रां प्रदर्श्य तत्र मूलं दशधा जप्त्वा फडिति अस्त्रेण संरक्ष्य गालिनीमुद्रां प्रदर्श्य वामहस्तानामिकांगुष्ठाभ्यां धृत्वा अर्घ्योदकेन एतन्नैवेद्यं सोपकरणं श्रीमदेकजटादेव्यै नमः। स्त्रीशूद्रेतरस्तु ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहेति जलं दत्त्वा वामहस्ते ग्रासमुद्रां बद्ध्वा दक्षहस्तेन प्राणादिमुर्शः प्रदर्शयेत्।

ततः पानार्थजलं ततस्ताम्बूलं चुल्वकादिशेषं समापयेत् घण्टावाद्यैः। तथा यथाशक्त्युपचारैः संपूज्य योनिमुद्रां प्रदर्श्य देवि! आज्ञापय परिवारांस्ते पूजयामि इत्युक्त्वा षडङ्गानि संपूज्य देव्या मौलौॐ अक्ष्योभ्यं वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा इत्यादिना सर्वत्राभ्यर्चयेत्। देव्या दक्षहस्तोर्ध्वे खड्गं तदधः कर्त्रिकां वामोर्ध्वे इन्दीवरं तदधः सद्यःकृत्तशिरःसहितचसकं संपूज्य वायव्यात् शिवकोणपर्य्यन्तं गुरुपक्ति प्रपूजयेत्।

उर्ध्वकेशव्योमकेशनीलकण्ठवृषध्वजान् ।
तत्रैवानन्दनाथान्तान् पूजयित्वा फलं लभेत्॥१६२॥

यथाविहित मन्त्रोच्चार करके पाद्य तथा अर्घ्यादि प्रदान करें। पदयुगल पर पाद्य, मस्तक पर अर्घ्य, कपाल पर गन्ध तथा चरणद्वय पर पुष्प निवेदन करें।

'यह स्नानीय है' कहकर स्नानीय प्रदान करें। मृगमुद्रा से 'गन्ध्योऽय नमः' कहकर गन्ध तथा 'पुष्पाणि वौषट्' द्वारा पुष्प प्रदान करे।

यथाविधान सब सम्पन्न करके अपने वाम में घंटी रखें तथा गन्धपुष्प से उसकी पूजा करके पात्र पर धूप संस्थापन, पूजामन्त्र जप करें। तथा वाम हाथ में घण्टा धारण करके 'एषः धूपः स्वधा' कहकर मन्त्र से धूपदान करें।

तदनन्तर मृगमुद्रा से धूपपात्र लेकर बायें हाथ से घंटा बजाते-बजाते देवी की नासिका से लेकर मुखपर्यन्त धूप की वायु को सुँघायें।

तदनन्तर 'दीपोऽयं स्वाहा' कहकर दृष्टिपर्यन्त दीपदान करके नीराजना करे। माल्यादि सभी द्रव्य भी प्रदान करें।

अपने बायें त्रिकोण अंकित करके उसमें नैवेद्य रखकर धेनुमुद्रा से उसका अमृतीकरण तथा योनिमुद्रा से उसमें १० बार मूलमन्त्र जप करें। तदनन्तर 'फट्' से संरक्षण करके गालिनी मुद्रा से वामहाथ की अनामिका एवं अंगुष्ठ से उसे धारण करके तथा अर्घ्यजल 'एतन्नैवेद्य' सोपकरण श्रीमदेकजटादेव्यै नमः से नैवेद्य अर्पित करें।

स्त्री तथा शूद्र व्यक्ति 'ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा' कहकर जल प्रदान करके बायें हाथ से ग्रासमुद्राबन्धन तथा दक्षिण हाथ से प्राणादि मुद्रा-प्रदर्शन करें।

तदनन्तर पानार्थ जल, ताम्बूल, गण्डूष को क्रमशः प्रदान करें। तब घण्टावादन के साथ यथाशक्ति उपचारों से विशेषतः पूजा तथा योनिमुद्राप्रदर्शन के साथ कहें देवि! आज्ञापय परिवारास्ते पूजयामि कहकर उनके षडङ्ग की पूजा तथा देवी के मौलिक (मस्तक के नाग किरीट) का पूजन 'ॐ अक्षोभ्यं वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' से करें।

तदनन्तर देवी के दक्षिण हाथ के ऊर्ध्वस्थापित (ऊपरी हाथों वाली) खड्ग, नीचे के हाथ की कटार, ऊपरी बायें हाथ के कमल तथा नीचे के हाथ में स्थित सद्यः कटे मुण्ड के साथ सुरापानपात्र की पूजा करके वायु कोण से लेकर ईशान कोण पर्यन्त गुरुपंक्ति की अर्चना करें।

गुरुपंक्ति हैं- ऊर्ध्वकेशानन्दनाथ, व्योमकेशानन्दनाथ, नीलकण्ठानन्दनाथ, वृषध्वजानन्दनाथ। इनकी पूजा से साधक को फल लाभ होता है॥ १६१-१६२॥

तारावती भानुमती जया विद्या महोदरी।
अम्बान्ताः पूजयेच्चैता इष्टमोक्षार्थसिद्धये॥१६३॥

वशिष्ठमीननाथश्च हरिनाथकुलेश्वरो विरूपाक्षमहेश्वरसुखपारिजाताः। महाकालरुद्राणी उग्रा भीमा घोरा भ्रामरी कालकर्त्री विश्वरूपा च। ॐ ऊर्ध्वकेशा-नन्दनाथ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुँ फट् स्वाहा। एवं व्योमकेशानन्दनाथ-नीलकण्ठानन्दनाथ-वृषज्वजानन्दनाथान् एवं तारावत्यम्ब-भानुमत्यम्ब जयावत्यम्ब-विद्यावत्यम्ब-महोदर्यम्बाः तथा वशिष्ठानन्दनाथ-मीननाथनन्दनाथ-हरिनाथानन्दनाथ-कुलेश्वरानन्दनाथ-महेश्वरानन्दनाथ-सुखानन्दनाथ-पारिजातानन्दनाथान् तथा महाकालरुद्राण्यम्ब-उग्राम्ब-भीमाम्ब-घोराम्ब-भ्रामर्यम्ब-कालरात्र्यम्ब-विश्व- रूपाम्बाः। ततः पूर्वादि वामावर्त्तेनाष्टदले पूजयेत्। ॐ विरोचन वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुँ फट् स्वाहा।

एवं शङ्खपाण्डर पद्मनाभ असिताङ्गनामक पाण्डर तारक पद्मान्तक वज्रपुष्पं प्रतीक्ष्य हुँ फट् स्वाहा इति पूर्वद्वारे। तथा उदीच्यां यमान्तकपश्चाद्विघ्नान्तकदक्षिणे नरान्तक

एतान् संपूज्य पञ्चपुष्पाञ्जलीन् दत्त्वा पाद्यार्घ्यादिना देवीं संपूज्य वामे त्रिकोणं षट्कोणं वृत्तं चतुरस्त्रं विलिख्य तत्र विभरितसाधारपात्रं समांसतण्डुलदधिहरिद्रा दग्धमीनासवपिण्याकलवणार्द्रकान्यमतं गृहीत्वा दक्षहस्ते जलं नीत्वा ॐ ह्रीं श्रीमदेकजटे देवि मयोपनीतं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय मम शान्तिं कुरु कुरु पर विद्यामाकृष्याकृष्य त्रुट त्रुट छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि सर्वजगद्वशमानय ॐ ह्रीं स्वाहा इति त्रिः पठित्वा बलि दद्यात्।

यदुक्तं कालिकाकल्प बलि स्वतनुशोणितम्।
तत् सर्वं कालिकार्चायां न ताराविषये क्वचित्॥१६४॥

तत्पश्चात् अभीष्ट, मोक्ष तथा अर्थसिद्धि हेतु तारावती, भानुमती, जयावती, विद्यावती तथा महादेवी के नाम के अन्त में अम्बा लगाकर पूजन करें।

तदनन्तर वसिष्ठानन्दनाथ, मीननाथानन्दनाथ, हरिनाथानन्दनाथ, कुलेश्वरानन्दनाथ, विश्वरूपाक्षनन्दनाथ, महेश्वरानन्दनाथ, सुखानन्दनाथ, पारिजातानन्दनाथ की महाकालरुद्राणी, उग्रा, भीमा, घोरा, भ्रामरी, कालरात्रि, विश्वरूपा नाम के साथ अम्बा लगाकर आराधना करें। इस प्रकार वामकेश   दि का पूजन करके पूर्वादि से वामावर्त्तक्रमेण अष्टदल में पूजा करे।

अब मूलोक्त 'ॐ विरोचन से लेकर फट् स्वाहा' पर्यन्त से पूर्व द्वार पर विरोजन की पूजा करें। उत्तर द्वार पर यमान्तक की, पश्चिम द्वार पर विन्धान्तक की, दक्षिण द्वार पर नरान्तक की पूजा करके पञ्चपुष्पांजलि प्रदान करके पाद्य एवं अर्घ्यादि से देवी की आराधना करके तथा वाम में त्रिकोण, षट्कोण, वृत्त तथा चतुरस्त्र बनाकर उसमें जलपूर्ण आधार पात्र, मांस, तण्डुल, दधि, हल्दी, दुग्ध, मत्स्य, आसव, पिण्याक, लवण, अदरख, द्रव्य को लेकर दाहिने हाथ में जल लेकर मूलोक्त 'ॐ ह्रीं श्रीमदेकजटे' से लेकर 'ॐ ह्रीं स्वाहा' को तीन बार पढ़कर बलि प्रदान करें।

'कालिका कल्प' में लिखा है कि अपने रक्त की बलि देनी चाहिए, वह कालिका हेतु है। तारा हेतु नहीं॥ १६३-१६५॥

स्वगात्ररुधिरं यत्तु तारकायै प्रदीयते।
तस्य रुष्टा सदा तारा न पूजाफलमाप्नुयात्॥१६५॥
त्रिकोणञ्चाष्टकोणञ्च वृत्तं कोणचतुष्टयम्॥१६६॥
बलिदाने त्विदं स्थानं शस्यते तारकार्चने॥१६७॥
ॐ ह्रीं एकजटेत्युक्ता देवीति तदनन्तरम्।
महायक्षाधिपतये मयोपनीतकं पदम्॥१६८॥

बलिञ्चोक्त्वा गृह्ण युग्मं श्रावयेत्तदनन्तरम्।
गृह्णापय पदद्वन्द्वं मग शान्तिं समाचरेत्॥१६९॥
कुरुद्वयं परविद्यामाकृष्याकृष्य एव च।
त्रुटयुग्मं वदेत् पश्चात् छिन्धियुग्मं ततः परम्॥१७०॥
भिन्धियुग्मं समुच्चार्य्य जगत् सर्वं वंश नय।
लज्जत् तारं समुच्चार्य्य बलिं दद्यात् पठेत् त्रयम्॥१७१॥

ततः पुनरर्घ्यं कृत्वा ॐ हौं ऐं श्रीमदेकजटे देवि मम सर्वविद्यां सिद्धथ सिद्धय गृहाणार्घ्यं सर्ववाचस्पतित्वं देहि स्वाहा। इत्युक्त्वा जय जय इत्युक्त्वा नीराजनपुरःसरं देव्या मौलौ यथाशक्ति जप्त्वा समर्प्य जलं देव्या वामहस्ते दद्यात्। ततः स्तवकवचादिपाठः सर्वत्र कुलक्रियादिपूर्वकः।

ततः प्रदक्षिणं कुर्य्यात् घण्टावाद्यपुरःसरम्।
ऊर्ध्वं दक्षिणकं हस्तं कृत्वा वारत्रयं नरः॥१७२॥
याम्याच्च वायव्यां गच्छेत् स्थित्वा किञ्चिच्च शाङ्करीम्।
पुनर्याम्यं प्रगत्वा तु प्रणमेच्च पुरःस्थितः॥१७३॥

जो तारा को अपने शरीर का रक्त चढ़ाता है, देवी उससे सदा रुष्ट रहती हैं। इसीलिए वह पूजाफल नहीं पाता।

उनकी अर्चना में त्रिकोण, अष्टकोण, वृत्त अथवा कोणचतुष्टय बलिदानार्थ स्थल है।

यह मन्त्र ३ बार पढ़कर बलि प्रदान करें–

'ॐ ह्रीं एकजटे देवीति महायक्षाधिपतये मयोपनीतकं बलि गृह्ण, गृह्णापय गृह्णापय मम शान्तिं कुरु कुरु परविद्यामा कृष्याकृष्य क्रट क्रट छिन्दि छिन्दि भिन्धि भिन्धि सर्वजगद्वशमानय ह्रीं ॐ'।

तदनन्तर पुनः अर्घ्य सज्जित करके 'ॐ हौं ऐं श्रीमदेकजटे देवि मम सर्वविद्यां सिद्धय सिद्धय गृहणार्घ्यं सर्ववाचस्पतित्वं देहि स्वाहा' कहकर पुनः जयध्वनि करें। इस ध्वनि के साथ नीराजन करें। देवी के मुकुट पर अर्घ्यदान तथा यथाशक्ति जप करके जप समर्पणार्थ देवी के बायें हाथ पर जल प्रदान करें। तदनन्तर स्तव पाठादि करना चाहिए। सर्वत्र ही कुलक्रिया के अनुरूप विधान से समापन करें।

तदनन्तर प्रदक्षिणा करके घन्टावादन करें। तब दाहिना हाथ ऊपर उठाकर दक्षिण से वायुकोण की ओर गमन करें॥ १६६–१७३॥

प्रणमेत् सप्तवारन्तु त्रिः प्रकुर्य्यात् प्रदक्षिणम्।
दण्डाकारं निपत्याथ कः फली भूमिमध्यतः॥१७४॥
अङ्गुलानाञ्च अग्रणि एकीकृत्य सुमानसः।
त्रिकोणाकारमाधाय किञ्चिद्वामांशतो नमेत्॥१७५॥

इस प्रकार सात बार प्रणाम तथा तीन बार प्रदक्षिणा करके दण्डाकार भूमि पर गिर जायें। पवित्रचित्त से उंगलियों का अग्रभाग सटाकर त्रिकोणाकार आधान करके वामांश में किंचित् झुक जायें॥ १७४-१७५॥

उरसा शिरसा पश्चात् पाणिभ्यां जानुतस्तथा।
नासाचिबुकयोगेन प्रणम्य सिद्धिमाप्नुयात्॥१७६॥

तदनन्तर उरु, मस्तक, दोनों बाहु तथा जानु द्वारा नासिका एवं चिबुक का योग करके प्राणायाम द्वारा सिद्धि प्राप्त होती है॥ १७६॥

अथ जपक्रमः

कुल्वुकां प्रजपेच्छीर्षे दशधा मन्त्रसिद्धये।
मुखे सेतुं सप्तधा च प्रणवेन पुटं हृदि॥
प्राणायामपरः पूर्वं जपेत् साधकसत्तमः॥१७७॥

कुल्वुका यथा-
स्वरं द्वितीयं चन्द्राढ्यं लज्जा चाङ्कुश एव च।
आं ह्रीं क्रौं इतिं शिरसि दशधा जपेत्। मुखे सेतुं ॐ इति सप्तधा जपेत्। हृदि प्रणव पुटितमन्त्रं सप्तधा जपेत्। सर्वत्र आदौ प्राणायामः। ततः सेतुं ततो महासेतुं ततो मन्त्रशिखाम् ॐ हौं ऐं इति सप्तधा जपेत्। ततो मन्त्रप्राणं कलरीं इति सप्तधा। ततः सहस्रम् अष्टोत्तरशतं विंशतिं वा जपेत्। ततो जलपुष्पं करतले नीत्वा।

ॐ गुह्यातिगुह्यगोप्त्री एवं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देवि! त्वत्प्रवादात्त्वयि स्थिते॥१७८॥

अब जपक्रम कहते हैं। मन्त्रसिद्धि हेतु मस्तक पर २० बार कुल्लु का जप करें। मुख में ७ बार, सेत, जप, हृदय में प्रणव पुटित जप करें। पूर्व में तथा बाद में प्राणायाम करके तब जप करें।

कुल्लुका यह है-अर्द्धचन्द्र युक्त द्वितीय स्वर (आं) लज्जा (ह्रीं) अंकुश (क्रों) इत्यादि मन्त्र का जप मस्तक पर १० बार करें। अर्थात् 'आं ह्रीं क्रों' को १० बार मस्तक पर जपें।

तदनन्तर मुख पर प्रणव पुटित मन्त्र को ७ बार जपें। हृदय पर भी प्रणव पुटित मन्त्र का जप ७ बार करें। सबके आदि में प्राणायाम करना चाहिए।

तदनन्तर सेतु, महासेतु तथा मन्त्रशिखा अर्थात् 'ॐ हौं ऐं' का यथाक्रम ७ बार जप करे।

तदनन्तर मन्त्र प्राण 'क लरीं' का ७ बार जप करके बाद में १००० या १०८ अथवा २० बार जप करें। तत्पश्चात् हथेली में जल तथा पुष्प लेकर श्लोक १८७ को पढ़ें। यह पढ़ते देवी के वामहस्त पर जल समर्पित करें॥ १७७-१७८॥

इति जपं देव्या वामहस्ते समर्पयेत्। ततः प्राणायामः। इति जपक्रमः। काम्यजपःपुरश्चरणप्रकरणे वक्तव्यः। नित्यजपे निगमम् अस्या एव।

सहस्रं प्रजपेन्मन्त्रं धर्ममोक्षार्थसिद्धये।
अष्टोत्तरशतं यत्तु तत् पूजायाः फलाप्तये।
विंशतिश्च जपेन्मन्त्रं पूजासिद्ध्यर्थमेव हि॥१७९॥
यावन्न क्रियते कर्म पुरश्चरणामुत्तमम्।

पूजनेतरजपे तारासारे

तावन्नैव प्रजतप्तव्यं सहस्रादधिकं शिव ?॥१८०॥
प्रजपेत् साधको यस्तु क्षोभयुक्तोऽप्यनन्यधीः।
सहस्रादधिकं वत्स! सहस्रेषु समर्पयेत्॥१८१॥

तब प्राणायाम करें यह जपक्रम की समाप्ति है। पुरश्चरण प्रकरण काम्य जपार्थ होता है। नित्य जप का यही क्रम है। धर्म-मोक्ष तथा अर्थसिद्धि हेतु एक सहस्र जप करें। १०८ जप करने पर पूजन का फलमात्र मिलेगा। २० बार जप से केवल ५ जपसिद्धि होती है। तारासार में पूजन रहित जप के विषय में कहते हैं- हे शिव! जब तक पुरश्चरण न करना हो, तब तक १००० से अधिक जप नहीं करना चाहिए। हे वत्स! इससे अधिक करने पर वह सहस्र में ही समाहित हो जाता है॥ १७९-१८१॥

एतेन पुरश्चरणहीनः सहस्रादूर्ध्वं न जपेत्। यद्येकदा अयुतं जपेत् तदा सहस्रं सहस्रं जप्त्वा समर्पयेत्।

सहस्रं प्रजपेन्मन्त्रं पुरश्चरणकर्मणि।
शतं तेन प्रजप्तव्यं ह्यधिकं न कदाचन॥१८२॥

ततोऽर्घ्यजलं नीत्वा इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना

यत् स्मृतं यदुक्तं यत् कृतं तत् सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु मदीयं सकलं सम्यक् श्रीमदेकजटादेवतायै सर्वं समर्पितमस्तु।

ततः संहारमुद्रया क्षमस्वेति विसृज्य ऐशान्यां त्रिकोणे ॐ उच्छिष्टचाण्डालिन्यै नमः। ततस्तेन यन्त्रलेपनचन्दनेन टीकापाद्यादिकं नैवेद्यं किञ्चिन् स्वीकृत्यान्यच्छक्तिभ्यो दत्त्वा यथेच्छं विहरेदिति एकजटापूजापद्धतिः।

अथ तारापूजनम्

प्रत्यालीढपदां देवीं महामायां त्रिलोचनाम्।
सर्वालङ्कारभूषाढ्यां महानीलप्रभां पराम्॥१८३॥
खड्गं पाशं दक्षिणे च वामेन्दीवरमूर्ध्वतः।
दधतं चषकं देव्या भावयेत् साधकोत्तमः॥१८४॥

इति ध्यात्वा तत्कल्पोक्तयन्त्रे पूजयेत॥ इति तारापूजा॥

अथ कामतारपूजनम्। तत्-कल्पोक्तयन्त्रे-

घोरहास्यां महादेवीं तारिणींताररूपिणीम्।
चसकेन्दीवरञ्चैव खड्गञ्चापि वरं तथा॥ १८५॥

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पुरश्चरण न करने पर २००० से अधिक जप न करें। सहस्र से अधिक को सहस्र में ही समर्पित करे।

अर्ण अर्घ्यनल लेकर मूलोक्त "ॐ इतः पूर्व" से लेकर 'सर्वं समर्पयेत्' तक पढ़ते हुए आत्मसमर्पण करें।

यदि एक ही बार में १०००० जप करना हो तब एक सहस्र जप के अनन्तर जप समर्पित करें। पुरश्चरण कार्य में १०० जप करें। उक्त आत्मसमर्पण मन्त्र का अर्थ है कि 'ॐकार उच्चारण करके इतिपूर्व प्रत्या-बुद्धि-देह तथा धर्मधिकारतः जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति में मन-वाक्य-कर्म-हस्तद्वय-उदर तथा शिश्न से जो कुछ स्मरण किया, जो कुछ किया, जो करता हूँ। वह सब ब्रह्मार्पण हो। मैं स्वयं का तथा अपने सब कुछ सर्वतोभावेन एकजटा देवी को समर्पण करता हूँ।'

तत्पश्चात् से संहार मुद्रा द्वारा 'अपराध मार्जन न करें' कहकर क्षमा प्रार्थना करके विसर्जनोपरान्त ईशानकोण में त्रिकोण मण्डल अंकित करके उसमें उच्छिष्ट चाण्डालिनी को प्रणाम करके पूजा करें। तदनन्तर उस यन्त्र लेपित चन्दन द्वारा टीका, पाद्यादि नैवेद्य कुछ ग्रहण करके शक्तिगण को शेष अंश देकर यथेच्छ विहार करें। यही एक जटापूजा विधान है।

अब तारा पूजन विधान कहते हैं- अब साधक तारा का ध्यान करें। देवी प्रत्यालीढ़ पद स्थिता हैं। वे महामाया, त्रिलोचना, सर्व अलंकार भूषिता, महानील प्रभायुता, परमस्वरूपा हैं।

उनके दक्षिण में खड्ग-पाश तथा वाम के ऊर्ध्वहाथ में नीलपद्म तथा आसवपात्र स्थित है। ऐसे देवी का ध्यान करें। देवी का ध्यान करके उनके कल्पोक्त यन्त्र में पूजन करें। यही तारा पूजा है।

अब कामतारा पूजा कहते हैं-उनके कल्पोक्त यन्त्र को कहते हैं। कामतारा घोर हास्या, महादेवी, तारिणी, तारारूपिणी, सुरापात्र, नीलकमल, खड्ग तथा वरमुद्रा धारिणी हैं॥ १८२-१८५॥

व्याघ्रचर्मपरीधानां सर्वालङ्कारभूषिताम्।
वक्षसा नागहाराञ्च महायोगस्वरूपिणीम्॥१८६॥

अथ उग्रतारापूजनम्। उग्रताराप्रकरणोक्तयन्त्रे या या लक्ष्म्यादि पीठशक्तयः। अत्र ताः ता न किन्तु-

इच्छाज्ञानक्रियाञ्चापि कामिनीं कामदायिनीम्।
रतिं रतिप्रियाञ्चैव रतिदां परिपूजयेत्॥१८७॥

वे व्याघ्रचर्म धारिणी, सर्वालंकार भूषिता, नागदृशशोभिता, महायोगरूपा हैं। ऐसे तारिणी का ध्यान तथा आह्वान करके सभी अनुष्ठान पूर्ववत् करें। यही है कामतारा पूजा।

तदनन्तर उग्रतारा पूजा कहते हैं-उग्रतारा के यन्त्र पर लक्ष्मी आदि सभी-पीठशक्ति का निर्देश है परन्तु यहाँ नहीं है।

वे इच्छा-ज्ञान तथा क्रियाशक्ति रूपा हैं। कामना सिद्धि देने वाली कामिनी, कामदायिनी, रति, रतिरूपा, रतिप्रिया, रतिशक्तिदातृ शक्ति का विशेष पूजन करें॥ १८६-१८७॥

शवोपरि महादेवीं शवेशहास्यसंयुताम्।
विपरीतरतासक्तामुग्रतारां परात्पराम्॥१८८॥
कर्त्रिकाखड्गसंयुक्तां दक्षिणे तारिणीं पराम्।
वामभागे नीलपद्मं चषकं तदधः स्मृतम्॥१८९॥
मुण्डमालावलीरम्यां रक्तधाराविभूषिताम्।
घोरहास्यां त्रिनेत्राञ्च सर्वदा ज्ञानदायिनीम्॥१९०॥

उग्रतारा का ध्यान यह है-महादेवी शवा रूपा हैं। वे परेश शंकर के साथ हास्य-प्रमोद-रसोल्लास-लीला चांचल्यरता हैं। उनके दाहिने हाथ में कैंची तथा खड्ग हैं। ऊर्ध्व वामबाहु में नीलपद्म तथा अधः वाम बाहु में सुरापात्र है।

वे विपरीतरतासक्ता तथा मुण्डमालावली के कारण रमणीय मूर्त्तियुता, घोरहास्या, त्रिनयना, रक्तमालाभूषिता तथा सर्वदा तत्वज्ञानप्रदात्री हैं॥ १८८-१९०॥

एकवेर्णीं महावेर्णीं फणिराजविभूषिताम्।
सुवर्णमुकुटैर्युक्तां शुभ्रदन्तविभूषिताम्॥१९१॥

शम्भुपत्नीमहाकालप्रियाणाम् प्राणायामः वेदकलावसुमन्त्रयुतः। इयान् विशेषः-

नीलवाणीं सदा वन्दे नीलाञ्जन चयप्रभाम्।
स्त्र्यलङ्कारसमोपेतां व्याघ्रचर्मावृतां कटौ॥१९२॥
नागेनावेष्टितां देवीं फणिहारविधारिणीम्।
फणिमस्तकयोगेन दक्षपादं प्रपञ्चितम्॥१९३॥
वामपादं शवे नाभौ रत्युल्लासहृदान्विताम्।
तामसीं महतीं विश्वमोहिनीं घोरकामिनीम्॥१९४॥

वे एकजटा तथा महावेणीयुता हैं। वे फणिराज-विभूषिता, सुवर्णमुकुट सुशोभिता हैं तथा उनके दाँत कुन्दपुष्प के समान हैं। परात्परा भगवती उग्रतारा का यह ध्यान करके पूर्ववत् पूजानुष्ठान करे। यही उग्रतारा का ध्यान हैं।

तदनन्तर शम्भुपत्नी महाकाली तथा महाकाल शिव के परमप्रियगण का प्राणायाम भी वेदकलावसुमन्त्र युक्त है।

यही उसमें विशेष है। सर्वदा नीलवाणी की वन्दन करता हूँ। वे नीलाञ्जनचयसन्निभा, स्त्रीजन के लिए उपयुक्त सर्वाभरणभूषिता तथा व्याघ्रचर्म परिवृत्ता हैं।

वे नागों से आवेष्टिता तथा फणिहार भूषिता हैं। उनका दक्षिण चरण सर्प के शिर पर युक्त है।

वामपाद शवरूपी शिव के नाभि पर स्थित है। उनका हृदयरति से उल्लासयुक्त है। वे विश्वमोहिनी तथा घोर कामिनी हैं॥ १९१-१९४॥

शिववक्त्रस्य भ्रमरां प्रत्यालीढपदां शुभाम्।
चमरीकेशसंस्कारसदागलितकुन्तलाम्॥१९५॥

वे तामसी–वेगवती तथा तरसी हैं। वे शिव के मुखकमल की भ्रमरी रूपा हैं। वे प्रत्यालीढ़पदा हैं। वे परमपवित्र तथा परममंगलमयी हैं। उनका केशपाश चमरी गौ की पूछ के समान है। उनका कुंडल सर्वदा हिलता रहता है॥ १९५॥

नानामणियुतां शीर्षे महापापविनाशिनीम्।
कपालञ्चापि खड्गञ्च नीलपद्मां सरस्वतीम्।
भावयेत् सर्वसिद्ध्यर्थं नीलवार्णीं कपित्थदाम्॥१९६॥

एवं ध्यात्वा सर्वं पूर्ववत् यन्त्रस्याष्टदिक्षु पद्मखड्गदण्डपाशकपालशूलगदाचक्रादीन् पूजयेत्। इति विशेषः। इति पूजनं नीलशारदायाः महानीलसरस्वत्याश्च। ततो यथाशक्ति नित्यहोमः। तथा निगमे–

एकधा ह्याहुतिर्येन तारकायै प्रदीयते।
कोटिजन्मकृतं पापं तत्क्षणात् तस्य नश्यति॥१९७॥

ततो बलिदानम्।

छागं वा महिषं वापि शूकरं वा पतत्रिणम्।
हस्तिनं मूषिकं वापि मार्जारञ्चापि मेषकम्॥१९८॥
दत्त्वा देव्यै महादेव्यै स भवेत् कुलनायकः।
बलिं पुरत आनीय योनिमुद्रां प्रदर्श्य च॥१९९॥

उनका मस्तक नानाजातीय मणि से अलंकृत है। वे महापापनाशिनी हैं। वे कपाल तथा खड्गधारिणी हैं। वे नीलपद्म का आश्रय लेकर विद्यमान हैं। मैं कपिदारिणी नीलवाणी सरस्वती की भावना सर्वसिद्धि हेतु करता हूँ।

इस प्रकार उनका ध्यान करके समस्त विधान पूर्ववत् ही करना होगा। यन्त्र के आठों ओर पद्म, खड्ग, गदा, दण्ड, पाश, कपाल, शूल, गदा, पद्म तथा चक्र प्रभृति की पूजा करें। यही इसमें विशेष है। यही है महानील सरस्वती तथा नीलसारदा की पूजापद्धति। तदनन्तर यथाशक्ति नित्य होम करें। तारानिगम में कहते हैं–

जो एक बार भी तारा हेतु आहुति प्रदान करता है, उसके करोड़ों जन्मकृत पातक नष्ट हो जाते हैं।

तदनन्तर बलिदान कहते हैं–

जो छाग, महिष, शूकर, पक्षी, हस्ती, मूषिका, मार्गा, मेष, महादेवी हेतु बलि करता है, वह कुलनायक हो जाता है। पुरोभाग में बलि लाये तथा योनिमुद्रा प्रदर्शित करे॥ १९६–१९९॥

दक्षिणे तद्गलं धृत्वा वामपृष्ठे नियोजयेत्।
श्रीमदेकजटे! देवि! वलिं गृह्ण सुरोत्तमे!।
मन्त्राणाञ्चापि मे सिद्धि लतासिद्धिञ्च देहि मे॥२००॥

"ॐ ह्रीं ह्रां हुं ऐं ऐं सर्वसिद्धिप्रदे! मे चतुर्वर्गसिद्धिं देहि देहि बलिं गृह्ण-गृह्ण स्वाहा।" इति निवेद्य खड्गं जलपुष्पादिना संपूज्य एकघातेन छेदयेत्। इति बलिदानम्।

आसवं संविदाञ्चापि निवेद्यानन्दमाचरेत्।
तदा पूजा प्रकर्त्तव्या ह्यन्यथा निष्फला भवेत्॥२०१॥

दक्षिण हाथ से उसका गला पकड़कर वामपृष्ठ में नियोजित करें- "हे सुरोत्तमे! हे देवी एकजटे! बलिग्रहण करिये। हमें लतासिद्धि तथा मन्त्रसिद्धि प्रदान करिये।"

"हे सर्वसिद्धिप्रदे! मुझे चतुर्वर्गसिद्धि दीजिये। बलिग्रहण करिये। बलिग्रहण करिये।" यह कहकर जल तथा पुष्पादि से खड्ग पूजा करके एक प्रहार में बलि पशु का छेदन करें। यही है बलि प्रणाली। तदनन्तर आसव एवं संविदा (भांग) प्रदान करके आनन्दकरण में प्रवृत्त हो जायें। तब पूजा करें। अन्यथा सब निष्फल होगा॥ २००-२०१॥

संविदां चतुर्धा विभज्य प्रथमे तत्त्वमुद्रया
ॐ संविदे! ब्रह्मसंभूते! ब्रह्मपुत्रि! सदानघे!।
भैरवाणञ्च तृप्त्यर्थं पवित्रा भव सर्वदा॥२०२॥

ॐ ब्राह्म्यै नमः स्वाहा। इति भूमौ क्षिपेत्।

ॐ सिद्धिमूलकरे! देवि! हीनबोधप्रबोधिनि!।
राजप्रजावशकरि! शत्रुकण्ठत्रिशूलिनि!॥२०३॥

ऐं क्षत्रियायै नमः स्वाहा।

ॐ नमस्यामि नमस्यामि योगमार्गप्रदर्शिनि!।
त्रैलोक्यविजये! मातः! समाधिफलदा भव॥२०४॥

ह्रीं वैश्यायै नमः स्वाहा।

ॐ अज्ञानेन्धनदीप्ताग्ने! ज्वालाग्निब्रह्मरूपिणी!।
आनन्दस्याहुतिं प्रीतिं सम्यग् ज्ञानं प्रयच्छ मे॥२०५॥

क्लीं शूद्रायै नमः स्वाहा। ततस्तन्मध्ये त्रिकोणं विलिख्य ॐ अमृते! अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणी! प्रिये! अमृतमाकर्षय आकर्षय स्वाहा। ततस्तत्त्वमुद्रया पूर्ववत्तर्पयेत्। ततोभूमौ किञ्चिन्निक्षिप्य ऐं ऐं वद वद वाग्वादिनि! मम जिह्वायां स्थिरीभव सर्वशत्रुक्षयं कुरु कुरु स्वाहा। इत्यनेन जुहुयादिति।

यत्रास्ते कमला कृताञ्जलिपरा वीणाधरा शारदा
तारावाक्यमनुस्मरन् प्रियतमं चोमावचःकारणम्।
ब्रह्मनन्दकृतौ सुसाधनविधौ ताररहस्ये शुभे।
ऽप्याचारादिविधौ तृतीयपटलः सर्वार्थसिद्धिप्रदः॥२०६॥

संविदा को ४ भाग में बाँटें। प्रथम भाग पर कहें जो मूलोक्त श्लोक २०२ हैं। अर्थात् हे संविदे! तुम ब्रह्म से उत्पन्न हो। तुम ब्रह्मपुत्री हो। तुममें पाप का लेश भी नहीं है। तुम भैरवगण की तृप्ति हेतु सदा पवित्र हो। तुम ब्राह्मी हो, तुमको नमस्कार है। तब ॐ ब्रह्मयै नमः स्वाहा कहकर उसे भूमि पर निक्षेप करें।

तदनन्तर कहें-'हे देवी! जिसमें बोध नहीं है, उसे भी तुम बोध प्रदान करती हो। तुम ही सिद्धि की मूल प्रसूति हो। तुम राजा-प्रजा को वशीभूत रखती हो। तुम शत्रु कण्ठ त्रिशूलिनी हो। तुम क्षत्रिया हो। तुमको प्रणाम। तुम योगमाया प्रदर्शित करती हो। तुमको प्रणाम-प्रणाम। तुमने त्रैलोक्य जय किया है। हे मातः! हमें समाधि फल प्रदान करो। तब 'ऐं क्षत्रियायै नमः स्वाहा' कहकर भूमि पर रखें। तुम वैश्या हो! तुमको नमस्कार तुम अज्ञानरूप ईंधन की प्रज्वलित अग्नि हो। तुम ज्वालाग्नि ब्रह्मरूपा हो। हमें आनन्द की आहुति, प्रीति तथा सम्यक् ज्ञान दो तब 'द्रीं वैश्यायै नमः' कहकर पृथिवी पर रखें।

'क्लीं शूद्रायै नमः स्वाहा' कहकर भूमि पर रखें। तुम शूद्रा हो! इन मन्त्रों का पाठ करे। तब वहाँ त्रिकोण बनाकर 'ॐ अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणी प्रिय! अमृतमाकर्षयमाकर्षय स्वाहा' कहकर तत्त्वमुद्रा प्रदर्शन करें॥ २०२-२०६॥

यह कहकर कुछ जल भूमि पर छोड़ें। और मन्त्र मूलोक्त २०८ से होम करो॥ २०८॥

जिसके समक्ष स्वयं कमला कृतांजलि होकर खड़ी रहती हैं, सारदा (सरस्वती) वीणापाणिनी होकर जिसकी सेवा करती हैं, उन तारा देवी के वाक्य का स्मरण तथा मननपूर्वक उनके अनुवर्त्ती होकर ब्रह्मानन्द गिरि ने परमवाक्य सम्पत्ति प्राप्त किया है। यह ब्रह्मानन्द गिरिकृत सुसाधनविधियुक्त शुभ तथा सुसिद्धिप्रद दीक्षाचरा विधि संयुत तृतीय पटल समाप्त॥ २०८॥

॥ इति ताराहस्ये तृतीयः पटलः॥

॥ तृतीय पटल पूर्ण॥

अथ चतुर्थः पटलः

अथ त्रिषोढाप्रकरणम्

प्रणवं मातृकावर्णैः पुटितं मातृकास्थले।
तेनैव पुटितं वर्णं न्यसेत्तत्रैव पार्वति!॥१॥ इति यामले।
केवलां मातृकां कृत्वा मातृकां तारसंपुटाम्।
तारेण पुटितां तान्तु लज्जा तु मातृकापुटा॥२॥

अब षोढान्यास कहते हैं–मातृकास्थान में प्रणव को अकारादि क्षकारान्त मातृकाओं से सम्पुटित करके तथा प्रणव द्वारा मातृकाओं को पूरित करके तब हे पार्वती! न्यास करें। यामल में यही कहा है।

केवल मातृकान्यास करके तदनन्तर प्रणपूरित मातृका तथा मातृकापूरित प्रभाव न्यास करना होगा॥ १–२॥

लज्जया पुटिता सा तु न्यस्तव्या साधकोत्तमैः।
मातृकया पुटा योषा योषया मातृका तथा॥३॥
मातृकया पुटं कूर्च्चं कूर्च्चेन पुटितार्णताम्।
मातृकापुटितं चापि ह्यस्त्रं मातृकया तथा॥४॥
मातृकापुटितं मन्त्रं मन्त्रेण पुटितान्तु ताम्।
अयुतं विन्यसेद् यस्तु वायुकुम्भकयोगतः।
महायोगी भवेत् सोऽपि देवीं पश्यति चक्षुषा॥५॥

इस प्रकार लज्जाबीज 'ह्रीं' को मातृका पूरित तथा मातृका को 'ह्रीं' पुटित करके न्यास करें। तदनन्तर मातृका बीज द्वारा 'स्त्रीं' बीज को तथा 'स्त्रीं' बीज द्वारा सम्पुटित मातृका न्यास करें।

कूर्चबीज (ह्रीं) को मातृका से तथा मातृका को कूर्च बीज द्वारा तथा मातृका अस्त् (फट्) द्वारा न्यास करें। मन्त्र का मातृका द्वारा तथा मातृका को मन्त्र से पुटित करके न्यास करें। जो व्यक्ति वायु तथा कुम्भक द्वारा अयुतबार

न्यास कर लेता है, वह महायोगी होता है, तथा देवी को प्रत्यक्ष देख सकता है ॥ ३-५ ॥

षोढाहीनस्य मन्त्रस्य दुर्बलत्वं प्रजायते।
न सिद्धिदो भवेत् सोऽपि मोक्षदो न कदाचन ॥ ६ ॥

यथा- अं आं अं, ओं अं ओं नमः। अं स्त्रीं अं नमः। स्त्रीं अं स्त्रीं नमः। अं ह्रीं अं नमः। ह्रीं अं ह्रीं नमः। अं हूँ अं नमः। हूँ अं हूँ नमः। अं फट् अं नमः। फट् अं फट् नमः। अं मूलं अं नमः। मूलं अं मूलं नमः। अं नमः अं, नमः अं नमः, अं लज्जा अं नमः, लज्जा अं लज्जा नमः, अं वधूम् अं नमः। वधू अं वधू नमः। अं कूर्चं अं नमः। कूर्चं अं कूर्चं नमः। पुनः अं फट् अं नमः। फट् अं फट् नमः। अं मूलं अं नमः। गूलं अंमूलं नमः इति वायुधारणेन न्यासं कृत्वा मूलेन सप्तधा व्यापकं कुर्य्यात्। इति गुह्यषोढा।

ह्रीं ऐं ह्रौं क्लीं हुं फट्।

लज्जा वाग्भवबीजञ्च प्रासादं काम एव च।
वर्मबीजं ततोऽप्यस्त्रं न्यस्तसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ७ ॥

इति महाषोढा

मन्त्र षोढ़ाहीन होकर दुर्बल हो जाता है। उससे कमी भी सिद्धि नहीं मिलती। मोक्षलाभ भी नहीं होता। मन्त्रक्रम विधान से वायुधारण करके न्यास करने से मूलमन्त्र से ७ बार व्यापक न्यास करें-यही गुह्यषोढा है। यह मूलोक्त तालिका में अंकित है।

इसके अनन्तर महाषोढ़ा में प्रवृत्त हो जाये।

लज्जा बीज (ह्रीं), वाग्बीज (ऐं), प्रसाद बीज (ह्रौं) कामबीज (क्लीं), वर्मबीज (हुँ), अस्त्रबीज (फट्) अर्थात्- 'ह्रीं ऐं ह्रौं क्लीं हुं फट्' इसका न्यास करने से शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ६-७ ॥

धूं धूं धूमावति! स्वाहा इति मन्त्रं जपेद्दश।
वर्णन्यासक्रमेणैव मायया पुटिता वधूः ॥ ८ ॥
वध्वा संपुटितान् वर्णान् विन्यसेत् साधकोत्तमः।
षड्धा न्यासं ततः कृत्वा महासिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ९ ॥
प्रत्यहं क्रियते येन षोढाः वत्स! महामहा।
मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तस्य स्वप्ने वाक्यं श्रृणोति हि ॥ १० ॥

तदनन्तर 'धूं धूं धूमावति स्वाहा' इसका १० जप करके वर्णन्यासक्रमेण मायाबीज (ह्रीं) से वधूवीज (स्त्रीं) को पुटित करके वर्णों को विन्यस्त करें।

उत्तम साधक वधूबीज सम्पुटित वर्ण का विन्यास करें। इस प्रकार ६ बार न्यास करके महासिद्धि प्राप्त होती है।

इस प्रकार पूर्ववत् पुटित करके वर्णन्यास के समान ५० स्थान में ५० वर्णों का ६ बार न्यास करें। यही है महाषोढ़ा।

हे वत्स! जो प्रतिदिन महाषोढ़ा न्यास करता है, उसे मन्त्रसिद्धि प्राप्त होती है। तथा वह स्वप्न में देवी वाक्य सुन लेता है ॥ ८-१० ॥

इति पूर्ववत् पुटितं कृत्वा वर्ण न्यासवत् पञ्चाशत् स्थाने षड्धा न्यसेत्। इति महाषोढा।

॥ इति ब्रह्मानन्दपरमहंसपरिव्राजकावधूर्तविरचिते तारारहस्ये च चतुर्थः पटले त्रिषोढाप्रकरणम्॥

॥ क्रियाप्रकरण समाप्त॥

षोढान्यासप्रकरणम्

षोढा नक्तं मत्स्यमांसं परमान्नादिभिर्युतम्।
सायंसन्ध्यां ततः कृत्वा योगं च परिकल्पयेत्॥ ११ ॥
आधारमूलं ग्रीवाग्रं मेरुदण्डं प्रकीर्त्तितम्।
तदाश्रित्य वसेत् लोके कोटितीर्थत्रयं तनौ॥ १२ ॥
वामे तदंशे नाडी स्यात् इडा सर्वार्थसिद्धिदा।
दक्षिणे पिङ्गला नाडी सर्वतीर्थमयी शुभा॥ १३ ॥
सुषुम्ना मेरुपुरतः पुण्यनाड्यखिलप्रदा।
तन्मध्ये चित्रिणी वज्रा तन्मध्यमध्यतः स्मृताः॥ १४ ॥
ब्रह्मनाडी समाख्याता ब्रह्मानन्दप्रदायिनी।
इन्दीवरमृणालेव राजते मध्यमध्यतः॥ १५ ॥

षोढ़ा की रात्रि में मत्स्य, मांस तथा परमान्न द्वारा भोग प्रदान तथा सायं सन्ध्या का समापन करके योगानुष्ठान में प्रवृत्त हो जायें।

आधारमूल, ग्रीवाग्र तथा मेरुदंड शरीर में कोटितीर्थ है। इसका आश्रय लेकर साधक अपने देह में रहता है।

शरीर के बायें ओर सर्वसिद्धिदा इड़ानाड़ी तथा दाहिनी ओर सर्वतीर्थयुता परममंगलरूपा पिंगला नाड़ी हैं।

मेरुदंड के पुरोभाग में अखिलसिद्धि प्रदा इड़ा नाड़ी तथा दाहिनी ओर सर्वतीर्थयुता परममंगलरूपा पिंगला नाड़ी है।

मेरुदंड के पुरोभाग में अखिलसिद्धिप्रदा पुण्य सुषुम्नानाड़ी है। उसमें चित्रिणी, वज्रा है। उसके मध्य में ब्रह्मानन्दप्रदा ब्रह्म नाड़ी है। यह नाड़ी नीलकमल के मृणाल की तरह मध्यमध्यतः विराजती रहती है॥ ११-१५॥

स्थिरवायुसमायोगात्तिष्ठत्येव चराचरम्।
स तावत् कुण्डलीशक्तिर्नासावायुः प्रकीर्त्तितः॥१६॥
मायायोगसमायोगात् तत्र चाष्टस्थितानि वै।
तिलकाकाररजतं तथा भाति च तिष्ठति॥१७॥
चैतन्यरहिता नाड्यो बद्धास्तिष्ठन्ति देहतः।
तीर्थं पुण्यं महापीठं तदाश्रित्य च तिष्ठति॥१८॥
यन्त्रं च देवता तत्र मूले च परिनिष्ठिता।
मेरोर्मूले यथा पद्मं मूलाधारं प्रकीर्त्तितम्॥१९॥

यह नाड़ी स्थिर वायु सहयोग से स्थावर-जंगम समस्त विश्व में स्थित रहती है। यही नासा वायु है कुण्डली शक्ति। मायायोग समायोग के कारण देह में आठ पथ प्रतिष्ठित हैं। तिलकाकार रजत के समान, चैतन्यरहित नाड़ी देह में परस्पर सम्बन्धयुक्त होकर उसका आश्रय लेकर स्थिर रहती हैं। इसी देश का आश्रय लेकर पुण्यतीर्थ तथा महापीठ स्थित है। इसी में यन्त्र तथा देवता का अधिष्ठान है। मेरु के मूलदेश में मूलाधार पद्म का अधिष्ठान है॥ १६-१९॥

चतुरङ्गुलविस्तीर्णमुच्छ्रितं चतुरङ्गुलम्।
चतुःपर्णं शोणपर्णं त्रिकोणं कर्णिका ततः॥२०॥
तन्मध्ये बिन्दुरूपो हि काकिनीशक्तिसंयुता।
स्वयंभूलिङ्गमाख्यातं स्वर्णवर्णं सुशोभनम्॥२१॥
यवपञ्चकमानन्तु महालिङ्गं मनोहरम्।
वेष्टयित्वा च विहरेत् शक्तिः कुण्डलिनी परा॥२२॥

वह चार अंगुल विस्तृत तथा चार अंगुल उन्नत है। उसके चार दल हैं। वे सभी दल रक्त वर्ण हैं। वे त्रिकोण दल हैं।

उनमें बिन्दुरूप तथा काकिनीशक्तियुक्त स्वयम्भूलिंग विराजित है। उसका वर्ण है स्वर्णवत्।

उसकी शोभा अतीव मनोहर है। उसका परिमाण है पाँच जौ के बराबर। पराशक्ति कुण्डलिनी मूलाधार मध्यस्थ इस मनोहर महालिंग को आवेष्टित करके विहार करती है॥ २०-२२॥

विलोलभुजगाकारा ब्रह्मरूपविधारिणी।
सार्द्धत्रिवलयाकारा महायोगमयी सदा।
षट्पदैव प्रोच्यमाना नैव लिङ्गं स्पृशेत् क्वचित्॥२३॥
सूर्य्यकोटिप्रतीकाशा चन्द्रकोटिसुशीतला।
तडिच्चञ्चलरूपाभा परब्रह्मस्वरूपिणी॥२४॥

इस कुण्डलिनी का आकार चंचल भुजंग के समान तथा सार्द्धत्रिवलय समन्वित है। यह सर्वदा महायोगमयी तथा ब्रह्मरूपा हैं। ये भ्रमरी के समान कही गई हैं। वे षट्पद्म के मधुपान में लोलुप हैं। लिंग को कभी स्पर्श नहीं करतीं। इनकी प्रभा कोटिसूर्यवत् दीप्ता तथा चन्द्रकोटि के समान सुशीतला हैं। इनकी चंचलता, रूप तथा आभा तड़ित्वत् है तथा ये परब्रह्मरूपा हैं॥ २३-२४॥

विराटमूर्त्तिर्देवेशो विहरेत् पूर्वतो दले।
चित्कलाशक्तिसंयुक्तः स्तूयते च कृताञ्जलिः॥२५॥
महाकाली दक्षिणे च कालिकाशक्तिसंयुतः।
स्तूयते परया भक्त्या महाज्ञानस्वरूपिणीम्॥२६॥
नारायणः पश्चिमे च महालक्ष्मीकुलेश्वरः।
स्तूयते परया भक्त्या भावेन कुण्डलीं पराम्॥२७॥

विराटमूर्त्ति देवेश्वर इसके पूर्व की ओर के दल में विराजमान हैं। वे चित्कलाशक्ति के साथ समवेत होकर कृतांजलिपुट होकर कपालिनी का स्तवन करते हैं।

दक्षिण में कालिका शक्ति के साथ महाकाल परमभक्तिपूर्वक महाज्ञानस्वरूपा कुण्डलिनी का स्तवगायन करते रहते हैं।

महालक्ष्मी कुलेश्वर नारायण पश्चिम में स्थित रहते हैं। वे भी परमाभक्ति युक्त होकर कुण्डलिनी का स्तव करते हैं।

उत्तर में महादेव पार्वती के साथ चित्त होकर इन सर्पाकृति महेश्वरी देवी तारिणी का स्तवगायन करते रहते हैं ॥२५-२७॥

उत्तरे च महादेवः पार्वत्या सह शङ्करः।
स्तूयते तारिणीं देवी सर्पाकारां महेश्वरीम्॥२८॥

यदा कदाचित् तद्वाचामेकं वाक्यं शृणोति हि।
तदा सृष्टिं स्थितिञ्चापि संहारं कर्त्तुमेव हि॥२९॥
ते शक्ताः स्युर्महादेव! साधु साधु प्रकाशितम्।
यदा लिङ्गे भवेल्लिप्ता तदा निद्रां व्रजेन्नरः॥३०॥
यदा सा परमा शक्तिः स्थिरलग्ने स्थिरा भवेत्।
तदा पुण्यकरो लोको भविष्यति न संशयः॥३१॥

उत्तर में महादेव पार्वती के साथ रहकर इस सर्पाकृति महेश्वरी देवी तारिणी के स्तवगान में लगे रहते हैं।

किसी भी समय उनका एक भी वाक्य श्रवण करके उनमें तत्क्षण सृष्टि स्थिति तथा संहार की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। यह निःसंदिग्ध रूप से प्रतिपादित होता है। यह कुण्डलिनी शक्ति लिङ्ग में विश्रान्त हो जाती है तब लोग निद्रित हो जाते हैं। (लिंग = लिंग शरीर)।

यह परमशक्ति जब स्थिर लग्न में स्थित रहती है, उस समय लोग पुण्यकार्य के व्रती हो जाते हैं॥ २८-३१॥

यदा मूर्द्धनि लिङ्गस्य सा ददाति सुखं परम्।
जप शक्तो भवेज्जीवस्तत्र शब्दे च सिद्धिदः॥३२॥

यह जब लिंग के मस्तक पर परमसुख प्रदान करती है, उस समय जीव जप में अशक्त हो जाता है। तब वे शब्द मात्र से ही सिद्धि प्रदान करती हैं॥ ३२॥

यदा पुच्छं लिङ्गमूर्ध्नि ददाति ब्रह्मरूपिणी।
गुरुतल्पं ब्रह्मयोषां गच्छेद् बालाञ्च कामिनीम्॥३३॥
षड्दलं लिङ्गमूले च पद्मं स्याद्रक्तपाण्डरम्।
तन्मध्ये रक्तपाण्डुञ्च लिङ्गं विश्वोद्भवात्मिकम्॥३४॥
डाकिनीशक्तिसंयुक्तं सर्वसिद्धिप्रदायकम्।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो भर्गश्चन्द्रः शचीपतिः॥३५॥
राजते दलमध्ये तु सर्वशक्तिसमन्वितः।
स्तूयते परमं लिङ्गं सर्वकामार्थसिद्धिदम्॥३६॥

जिस समय ये लिंग के मस्तक पर पृच्छ रखती हैं तब लोग उस समय गुरुपत्नी गमन, ब्राह्मणीहरण तथा बालिका से संसर्ग करते हैं।

लिंगमूल में जो रक्तपाण्डुरवर्ण षड्दल पद्म है, उसमें रक्तपाण्डुर वर्णयुक्त लिंग विराजित हैं। यही है विश्वसृष्टि का उपादान।

डाकिनी शक्ति इसी के साथ युक्त होकर सर्वसिद्धिप्रदा होती है। ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र-सूर्य-चन्द्र-इन्द्र ये दलमध्य में विराजित रहते हैं और उस शक्तियुक्त होकर वे सर्वकामार्थसिद्धिप्रद परमलिंग का स्तव करते हैं॥ ३३-३६ ॥

मूलाधारात् कुण्डलिनीं तत्र यत्नेन चालयेत्।
तस्याः स्पर्शनमात्रेण दलं तस्योत्तर मुखम्॥३७॥
पद्मोपरि व्रजेन्नैव महाशक्तो महेश्वरि!।
किन्तु तत्र स्थिताः सर्वे स्ववर्गा गच्छन्ति तत्कुले॥३८॥
एकत्रीभूय ते सर्वे स्तुवन्ति सिद्धिदायिनीम्।
नाभावष्टदलं पद्मं नवीनजलदप्रभम्॥३९॥

कुण्डलिनी को मूलाधार से यत्नपूर्वक चालित करें। उसके स्पर्शमात्र से दल उत्तरमुख हो जाते हैं और कभी भी पद्म के ऊपर नहीं जाते। लेकिन सभी वहीं स्थित रहते हैं और सभी उसके ही कुल में गमन करते हैं।

और सभी वहाँ एकीभूत होकर इन सिद्धिदात्री का स्तव करते हैं। नाभिदेश में नवीन जलदप्रभ अष्टदल पद्म हैं॥ ३७-३९ ॥

विश्वान्तकस्तत्र लिङ्गं शाकिनीशक्तिसंयुतम्।
इन्द्रो वह्निः पितृपतिर्नैर्ऋतो वरुणो मरुत्॥४०॥
कुबेरस्तत्र ईशानः स्वस्वशक्तिसमन्वितः।
तत्र पद्मस्य मध्ये तु ब्रह्मानाडीसमाश्रिताम्॥४१॥
कृत्वा तु तस्य पात्राणि चोत्तरञ्च विभावयेत्।
ते ते देवास्तो गत्वा स्तुवन्ति भक्तिसंयुताः॥४२॥

विश्वसंहार के हेतुभूत लिंग शाकिनी शक्ति वरुण, वायु, कुबेर, ईशान अपनी-अपनी शक्ति के साथ इसी पद्म का आश्रय लेते हैं। उसके मध्य में ब्रह्म नाड़ी का स्थान है। वे-वे देवता वहाँ गमन करके भक्तिपूर्ण स्तव करते हैं॥ ४०-४२ ॥

हृदये च ततो ध्यायेत् पद्मं षोडशभिर्दलैः।
महाशुक्लं महापद्मं गजकुम्भाकृतिं दलम्॥४३॥
इन्द्रश्चन्द्रो गुरुः शुक्रो वामदेवः शिवापतिः।
ईश्वरः शङ्करः कृष्णः वामदेवः कुलेश्वरः॥४४॥
कमलानायकः कोपः कामरूपः कृपामयः।
करणे षोडशके च स्वस्वयोषासमन्वितः॥४५॥
स्तूयते सर्वदा भक्त्या महालिङ्गं महेश्वरम्।
डाकिनीशक्तिसंयुक्तं भावयेच्च परात्परम्॥४६॥

तदनन्तर हृदय में षोडशदल पद्म में ध्यान करें। यह महापद्म अत्यन्त श्वेतवर्ण है तथा उसका दल गजकुंभ आकृति का है।

इन्द्र, चन्द्र, गुरु, शुक्र, कामदेव, शिवपति, ईश्वर, शंकर, कृष्ण, कुलेश्वर, कमलानायक, कोप, कामरूप, कृपामय–ये अपनी–अपनी शक्ति के साथ षोडशदल में यथाक्रमेण स्थित रहते हैं। वे भक्तिपूर्वक डाकिनी शक्ति के साथ ही माहेश्वर महालिंग को स्तव करते हैं ॥ ४३–४६ ॥

तत् पन्थानं समारुह्य तत्र देवीं समानयेत्।
तद्वामे राजते जीवस्तदधः पाप एव च ॥४७॥
सुरापानहृदा युक्तं गुरुतल्पकटिद्वयम्।
वज्रदण्डसमोपेतं मृदुदन्तविभूषितम् ॥४८॥
महाकायं महादेवरहितं हृदये सदा।
नखे स्वर्णहृतं चिह्नं सर्वदोषयुतं परम् ॥४९॥

इस परात्पर लिंग की भावना इस प्रकार करके तथा–उनके मार्ग का आश्रय लेकर देवी कुण्डली को वहाँ लाये। उनके वामभाग में जीव तथा अधोभाग में पाप स्थित रहता है।

सुरापान इस पाप का हृदय है। गुरुपत्नी गमन उसके (पाप के) नितम्बद्वय हैं। वज्र उसका दण्ड है। इसके अतिरिक्त उसका मृदुदण्ड भी है। इसका देह अत्यन्त विशाल है। इसके हृदय में भगवान हृषीकेश नहीं रहते। उनके नखों में सोना हरग करने के चिह्न हैं। उसका देह समस्त दोषों का स्थान है ॥ ४७–४९ ॥

नवाकारं मोक्षहीनं कुलाचारविहीनकम्।
कामदं कामरूपेण रतिदोषप्रदं तथा ॥५०॥
ततः परं भावयेच्च दशपत्रं सुशोभनम्।
नीलवर्णं महापद्मं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥५१॥
महालिङ्गं कामनाम राजते कामिनीयुतम्।
कामदेवश्च साम्बश्च कामाचारश्च कामुकः ॥५२॥
कामिनीनायकः कामो ब्रह्मानन्दः कुलेश्वरः।
त्रिलोकेशः सदानन्दः कौलो दशदले स्थितः।
स्वस्वशक्तिसमोपेताः स्तुवन्ति कुण्डलीं पराम् ॥५३॥
ललाटे नेत्रपत्रञ्च ब्रह्मलिङ्गसमन्वितम्।
सशक्तिर्विष्णू रुद्रश्च स्तौति तारासमन्वितः ॥५४॥

यह पाप मोक्षहीन, कुलाचारहीन, कामद, कामरूप तथा रतिदोष प्रदान करता है।

इसके पश्चात् दशदलयुक्त, नीलवर्णसमन्वित, सर्वसिद्धिप्रद, सुशोभन महापद्म की भावना करें।

कामनाशक महालिंग कामिनी के साथ उसमें विराजित रहते हैं। कामदेव, सदाशिव, कामाचार, कामुक, कामनायक, कामदेव, ब्रह्मानन्द, कुलेश्वर, त्रिलोकेश, सदानन्द– ये कौल इस दशदल में स्थित रहते हैं। ये सभी अपनी–अपनी शक्ति के साथ स्थित रहते हैं। ये कुण्डली का स्तव करते हैं॥ ५०–५४॥

तं विभिद्य गता देवी कुण्डली शक्तिरुत्तमा।
अधोमुखं सहस्त्रारं मेरुदण्डाग्रनाडीतः।
त्रिलोकस्थास्ततो देवाः सन्ति तत्रैव शक्तिभिः॥५५॥
नाडीत्रयसमोपेतं सरोजं द्वादशं दलम्।
त्रिकोणकर्णिका तत्र ब्रह्मविष्णुशिवान्विता।
दन्तावीकवती शय्या शक्तिवज्रसमन्विता॥५६॥
तत्रापि श्रीगुरुः साक्षात् सर्वभूतहिते रतः।
कर्पूरधवलं देवं ब्रह्मरूपिणमव्ययम्॥५७॥

देवी कुण्डलिनी शक्ति इस पद्म का भेद करके मेरुदण्ड के अग्रभागस्थ नाड़ीपथ में विराजित अधोमुख सहस्त्रारपद्म में जाती हैं। वहाँ त्रिलोकस्थ देवता अपनी–अपनी शक्ति के साथ स्थित रहते हैं।

इसके पश्चात् नाड़ीत्रय युक्त द्वादशदल कमल है। उसकी त्रिकोण कर्णिका पर ब्रह्मा–विष्णु–शिव विराजित रहते हैं। उसके शिक्तिवज्र युक्त दण्डावीक नामक जो शय्या है, उस पर कर्पूरवत् धवलवर्ण, सर्वभूतहितरत गुरुदेव अपनी शक्ति के साथ विराजित रहते हैं॥ ५५–५७॥

परमं शिवमाख्यातं कौबेरास्यं विभावयेत्।
मूलादिदेवताः सर्वे स्तुवन्ति सर्वकारणम्॥५८॥
कुण्डलिनीं महाशक्तिं ललाटे कमलावतीम्।
भावयेच्छिवरूपेण वामभागे समानयन्॥५९॥
वामे रतिञ्च संस्थाप्य गुरोरेव सुसिद्धये।
समुत्थाय गुरुस्ताञ्च साकारां मन्त्ररूपिणीम्॥६०॥
तत्रापि गुरुणा देवि! वीतशक्ता महेश्वरी।
उपरि स्थीयते तेन महामोहविनाशिनी॥६१॥
वामपादाङ्गुष्ठतोऽस्याः वक्ष्यतेऽमृतमुत्तमम्।
तत् पीत्वा सुखदुःखाभ्यां जीवो जीवति नित्यशः॥६२॥

ये ही परमशिव हैं। इन अव्यय तथा ब्रह्मरूपी उत्तराभिमुखी गुरुदेव की भावना करें। मूलाधारादि के सभी देवता इन सर्वकारण परमशिव का स्तवन करते हैं।

ललाटस्था कमलावती नामक महाशक्ति कुण्डलिनी के वामभाग में आनयन करके शिवरूप से पूजा करें।

उस समय सुसिद्धिहेतु गुरु के वामभाग में रतिदेवी की स्थापना करें तथा उन मन्त्रस्वरूपा (कुण्डलिनी) को ऊपर उठायें।

हे देवि! वीतशक्ता महेश्वरी गुरु के साथ वहाँ वास करते हैं। वे महामोह का नाश करती हैं।

इनके वामपाद अंगूठे से अमृत उत्पन्न होता है। उसका पान करके जीव नित्य सुख-दुःख से जड़ित होकर जीवित स्थिति में सुख-दुःख वर्जित भावापन्न होकर कालयापन करता है॥ ५८-६२॥

भावनाभ्यासयोगेन यदि नाडीं प्रवेशयेत्।
महासिद्धिं स लभतेऽप्यमरो जयते ध्रुवम्॥६३॥

इति तारायोगे योगसारः

यत्रास्ते कमला कृताञ्जलिपरा वीणाधरा शारदा
ताराराध्यमनुस्मरन् प्रियतमं चोमावचः कारणम्।
ब्रह्मानन्दकृतौ सुसाधनविधौ ताररहस्ये शुभे
योगाचारविधौ चतुर्थपटलः सर्वार्थसिद्धिःप्रदः॥६४॥

साधक भावना तथा अभ्यास रूप योगबल से यहाँ नाड़ी को प्रविष्ट करायें। इससे महासिद्धि प्राप्त करके अमर हो सकते हैं।

जिसके समीप स्वयं कमला कृताजलिबद्ध होकर दण्डायमाना रहती हैं, सरस्वती वीणाधारिणी रूप में जिनकी सेवा करती हैं, उन तारादेवी का स्मरण मनन वाक्य से करके उनका अनुवर्त्ती होकर कार्य करके ब्रह्मानन्द गिरि ने परमवाक्य सम्पत्ति प्राप्त किया है। इन ब्रह्मानन्द गिरि कृत सुसाधनविधि समन्वित ताररहस्य का शुभ एवं सुसिद्धिप्रद योगाचार विधिसंयुक्त चतुर्थ पटल समाप्त॥ ६३-६४॥

॥ इति ताररहस्यतन्त्रं समासम्॥

॥ समासश्चाऽयं ग्रन्थः॥

॥ ग्रन्थ सम्पूर्ण॥

●●●

हमारे अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

1. **तैत्तिरीयोपनिषद्।** समूलशांकरभाष्य एवं 'ज्योती' हिन्दी टीका सहित। व्याख्याकार श्री कन्हैयालाल जोशी
2. **छन्दःशास्त्रम्।** श्रीपिंगलनागविरचितं। श्री हलायुधभट्टविरचितया मृतसंजीव-व्याख्यया वृत्त्या समेतम् पं. श्री मधुसूदनविद्यावाचस्पति-रचित-छन्दो निर्वक्तिसनाथीकृत च। म.म.पं. श्री दुर्गाप्रसाद तनयेन पं. केदार-नाथेन संशोधितम् तच्च वि. अनन्तशर्मणा विशल्यकरणी नाम्न्या टिप्पण्या समलंत्य संस्कृतम्
3. **मृच्छकटिकम्।** महाकवि शूद्रकप्रणीतं। पृथ्वीधरकृत व्याख्या सहित
4. **रघुवंशम्।** महाकविकालिदासविरचितं मल्लिनाथ कृत संजीविनी समेतम्। काशीनाथपाण्डुरंग पर्व इत्यनेन पाठान्तरैः संयोज्य संशोधितम्
5. **सरस्वतीकण्ठाभरणम्।** (अलंकारशास्त्र) भोजकृत। 1-3 परिच्छेद तक रामसिंह विरचित टीका तथा 4 परिच्छेद को जगद्धररचित टीका सहित
6. **रुपदीपिका।** रामानन्द द्विवेदिना विरचित
7. **वेणीसंहारम्।** भट्टनारायणप्रणीत। जगद्धरकृतया टिप्पण्या समेतम् उपोद्घात शेषराज शर्मा
8. **उत्तररामचरितम्।** भवभूतिप्रणीतं। वीरराघवकृतया टीकया समेतम्। उपोद्घात-शेषराज शर्मा
9. **रीतिकालीन काव्यशास्त्र और पदुमनदास।** कुबेर राय
10. **रीतिकालीन लक्षण ग्रन्थों में भाषाभूषण का स्थान।** सावित्री श्रीवास्तव
11. **वैष्णवधर्म।** परशुराम चतुर्वेद सं. नन्दिश्वर चतुर्वेदी
12. **सूरदास की प्रतिभा।** भगवतीप्रसाद राय
13. **कथासरित्सागर तथा भारतीय संस्कृति।** सिद्धनाथ प्रसाद
14. **अपभ्रंश और अवहट्टः एक अन्तर्यात्रा।** सं. शम्भूनाथ पाण्डेय
15. **संतसाहित्य।** राधेश्याम दूबे
16. **मणिपुरी नर्तन।** दर्शना झवेरी तथा कलावती देवी। भूमिका हरेकृष्ण मुखोपाध्याय एवं कपिला वात्स्यायन
17. **मृत्यु-रहस्य।** वेणीराम शर्मा गौड़
18. **स्वर और रागों के विकास में वाद्यों का योगदान।** (संगीतशास्त्र)। इन्द्राणी चक्रवर्ती। प्रस्तावना कु. प्रेमलता शर्मा
19. **उत्तररामचरित की शास्त्रीय समीक्षा।** (समीक्षा) सत्यनारायण चौधरी
20. **मध्यकालीन रामकाव्य धारा पर कृष्णभावना का प्रभाव।** तपेश्वर नाथ प्रसाद
21. **वैष्णव-संगीतशास्त्र।** घनश्यामदास विरचित। रागरत्नाकर, गीतचन्द्रोदयः, तालार्णवः तथा श्री श्री भक्तिरत्नाकरः (पञ्चमतरंग का संगीतांश)। संस्कृत तथा हिन्दी अनुवाद। अनुवादक गजाननरानडे शास्त्री तथा मदनलाल व्यास सम्पादक गुरुविपिन सिंह प्रस्तावना दर्शना झवेरी। 1-2 भाग सम्पूर्ण
22. **कविकर्णपूर और उनके महाकाव्य एक अध्ययन।** लेखिका डॉ. कृष्णलता सिंह प्राक्कथन डॉ. मातृदत्तत्रिवेदी
23. **शिवपुराण में वर्णित सभ्यता।** लेखक डॉ. राजकुमार पाठक
24. **प्राचीन भारत।** (आदि काल 320 से 1206 ई. तक) उपेन्द्र ठाकुर एवं महेश कुमार शरण 1-2 भाग सम्पूर्ण
25. **व्यंजनाप्रपंचसमीक्षा।** (तुलनात्मक प्रतीकतत्वविमर्शः) मुकुन्द माधव शर्मा
26. **विद्धशालभंजिका-नाटिका।** (नाटिका) राजशेखर प्रणीत। नारायण दीक्षित रचित संस्कृत व्याख्या, छित्ति हिन्दी व्याख्या बाबूलाल शुक्ल शास्त्री सम्पादित।

1834-3

चौखम्भा ओरियन्टालिया
पो० बॉ० नं० 2206, बंगलो रोड, ९-यू.बी., जवाहर नगर,
(कमला नगर के पास) दिल्ली-7 फोन : 23851617, 23858790